हिन्दी

शीराज़ा



जे. एंड के. अकैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेजिज़
जम्मू



द्विमासिक

शीराज़ा

हिन्दी

जून–जुलाई 2009

प्रमुख संपादक

ज़फ़र इक़बाल मन्हास

संपादक

नीरू शर्मा



जे० एंड के० अकैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेजिज़, जम्मू-180 001

SHEERAZA Regd. No. : 28871/76 June-July 2009
(Hindi)

वर्ष : 45 अंक : 2 पूर्णांक : 191



★ पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। इनसे जम्मू-कश्मीर कला, संस्कृति एवं भाषा अकैडमी का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

प्रकाशक : सचिव, जम्मू-कश्मीर कला, संस्कृति एवं भाषा अकैडमी जम्मू-180 001

पत्र-व्यवहार : संपादक, शीराज़ा हिन्दी, जम्मू-कश्मीर कला, संस्कृति एवं भाषा अकैडमी जम्मू-180 001; दूरभाष : (0191)-2577643, 2579576

मुद्रक : रोहिणी प्रिंटर्ज़, कोट किशन चंद, जालंधर, पंजाब-144 004 दूरभाष : (0181)-2640025

शुल्क दर : एक प्रति 10 रुपये; वार्षिक 50 रुपये

संपादकीय

सृष्टि के आरंभ में आज तक मानव निरंतर सत्य की खोज में लगा है। दार्शनिक, वैज्ञानिक एवं साहित्यकार सभी इसी कार्य में कार्यरत हैं और आज भी उनका कार्य पूर्ण नहीं हुआ। अपने-अपने क्षेत्र में सभी ने सत्य का अन्वेषण करते हुए कुछेक तथ्य प्राप्त भी कर लिए हैं। पर क्षेत्र भेद एवं देश में बदलती परिस्थितियों के कारण वे सर्वग्राह्य नहीं हो पाए।

दार्शनिक जगत् का सत्य बुद्धि और आत्मा से संबंध रखता है, वैज्ञानिक का भौतिक पदार्थों से और साहित्य का सत्य हमारे भाव और कल्पना जगत को आन्दोलित और परिष्कृत करता है। दर्शन का सत्य अधिकतर लोगों की समझ से परे होता है। पर रचनाकार का सत्य मधुरता एवं नवीनता के कारण सर्वगाह्य होता है। दार्शनिक एवं वैज्ञानिक यथार्थ से तथ्य मात्र लेते हैं परन्तु रचनाकार उन तथ्यों के पीछे छिपे सौंदर्य और रमणीयता को अपनी कल्पना एवं संवेदनशीलता से ग्रहण कर उसे व्यापकता प्रदान करता है।

प्रात:कालीन दूर्वा पर मोती की मानिंद चमकती ओस की बूंदों में दार्शनिक को जगत् की क्षणभंगुरता दिखाई देती है, जबकि वैज्ञानिक हाइड्रोजन और आक्सीजन गैसों का विशेष अनुपात में मिश्रण देखता है। पर साहित्यकार उस ओस बूंद में मोती की आभा, फूलों का श्रृंगार, पारे की सरलता, गंगाजल की पवित्रता और कभी-कभी उसमें करुणा के आंसू और कभी नक्षत्रों का सौंदर्य देखता है। तभी तो वह उसे अपनी संवेदना, अनुभूति एवं कल्पना द्वारा सूक्ष्म, तरल, रम्य, आंतरिक एवं पूर्ण बनाता है।

साहित्यकार का सत्य कल्पित होते हुए भी त्रिकालदर्शी होता है। वह मानव हृदय में उठने वाली भावरूपी तरंगों को अलंकृत भाषा के माध्यम से व्यक्त करता है। वह रचना करते समय मूक धरातल से ऊपर उठकर उस स्थिति तक पहुंच जाता है, जहां मानव-मात्र की भावनाओं को अपना-सा महसूसने लगता है।

कहने का तात्पर्य यह है कि साहित्य जीवन की व्याख्या है और वह व्याख्या घटनामूलक न होकर भावमूलक होती है। वह हमारे हृदय और उसमें तरंगित होने वाली भावनाओं का सत्य है, मानव हृदय के गूढ़ रहस्यों का उद्‌घाटन है और उसके हृदय पर प्रकृति का जो भी प्रभाव पड़ता है, रचना के माध्यम से उसी का प्रस्फुटन होता है।

'शीराज़ा' के माध्यम से कुछ ऐसी ही रचनाओं को पाठकों तक पहुंचाने का प्रयत्न किया है। आशा है आपको अवश्य पसंद आयेंगी।

नीरू शर्मा

इस अंक में

लम्बी कविता में मिथक का पुनर्सृजन

❑ डा० रजनी बाला

आधुनिक जीवन के जटिल युग-बोध में रचनाकार जब अतीत की ओर प्रत्यागमन करता है तब पाता है कि युगजनित यह जटिलता अतीत की कोख से ही जन्मी है, जिसका प्रवाह कालान्तर में भी थमा नहीं है। सामूहिक मनस् और प्रजातीय अवचेतन में रचे-बसे पुरातन चरित्र, अतीत घटनायें, धर्म-गाथायें और ऐतिहासिक प्रसंग सृजन के धरातल पर मिथकीय रूप ले लेते हैं। इस प्रकार पुरा-कथाओं में विद्यमान समकालीन दर्शन को ही मिथक कहा जा सकता है। विघटनकारी ताकतों और मूल्यघाती दौर के बीच इतिहास की सुरंग से गुजरते हुए पौराणिक प्रसंगों, चरित्रों और ऐतिहासिक सन्दर्भों का काव्य के जरिये सर्जनात्मक प्रयोग सीधे-सीधे कवि की मिथकीय चेतना और बोध से जुड़ता है। इस दृष्टि से देखें तो ऐतिहासिक दस्तावेज़ों का ज्यों-का-त्यों प्रयोग अथवा पौराणिक प्रसंगों का अन्धानुकरण रामायण, महाभारत को बांचने या इतिहास पढ़ने-लिखने से ज़्यादा और कुछ नहीं। मिथक वह तब बनता है जब उसे वर्तमान प्रासंगिकता तथा समकालीन युग-बोध के परिप्रेक्ष्य से जोड़ने का कलात्मक एवं सर्जनात्मक प्रयास किया जाता है।

मिथक संस्कृति-सापेक्ष होते हैं। किसी राष्ट्र की सांस्कृतिक धरोहर जितनी सुदढ़ दीर्घ और महान होती है मिथकों का कोष वहां उतना ही विशाल होता है। संस्कृति के क्षय के साथ लोकमानस की स्मृति से, संचित पौराणिक प्रसंग एवं चरित्र भी धूमिल होने लगते हैं। आज की फैशनपरस्त युवा पीढ़ी एवं अपने बच्चों में हम इस नुकसान को आसानी से पहचान सकते हैं। इस मायने में एक कवि सामूहिक अवचेतन में स्मृति विलोप के आक्रमण को रोकने का काम मिथकीय प्रयोग से करता है। हमें समझना होगा धर्म-गाथायें और पौराणिक प्रसंग काल्पनिक लोक की कॉमिक कथा नहीं बल्कि कल की धर्म-गाथा आज का मिथक है। इस मायने में मिथक को सामूहिक मनस्, लोकमानस की भाव निर्मात्री शक्ति कहा जा सकता है। मिथकों के जरिये सांस्कृतिक जड़ों की पहचान करते हुए हम अपनी जातीय विरासत से जुड़ते हैं।

हिन्दी काव्य में मिथकों का प्रबन्ध काव्य और लम्बी कविता में खासा प्रयोग हुआ है लेकिन यहीं पर ध्यान देने की बात है कि प्रबन्ध में मिथक का कथात्मक और आवयविक ढांचा होता है जबकि लम्बी कविता में उसे कलात्मक और मौलिक रूप के साथ नवीन सन्दर्भों के परिप्रेक्ष्य में अपनाया जाता है।

मिथक का कथात्मक रूप छायावादी दौर की लम्बी कविताओं जैसे निराला की 'पंचवटी प्रसंग' (1923), 'यमुना के प्रति' (1930), 'शिवाजी का पत्र' (1930) और प्रसाद की 'प्रलय की छाया' (1933), 'शेरसिंह का शस्त्र-समर्पण' (1935) में देखा जा सकता है। इसके बावजूद इन सभी लम्बी कविताओं का महत्त्व इस दृष्टि से है कि ये प्रबन्धात्मक ढांचे की बन्दिश से मुक्त हैं। नयी कविता के दौर में मिथकों के स्थूल प्रयोग के साथ विचारपरक नज़रिया जुड़ा है। ध्रुवदेव मिश्र पाषाण की लम्बी कविता 'वाल्मीकि की चिन्ता' (1991) में वनवासी राम जब सत्ताधारी राम बन जाते हैं तब सत्ता-नियामक के चरित्र में किस प्रकार अकस्मात् परिवर्तन आता है इसे कवि ने लक्षित किया है 'सत्ताधारी बनने पर/असह क्यों हो गया/शंबुक की तपस्या का ताप तुम्हें?/प्रासादी पकवानों की गंध में/शुद्रा उस शबरी के बेरों का भूला क्या तृप्तिकारी स्वाद तुम्हें ?' यहां स्थूल कथा-प्रसंग बेशक हो लेकिन दलित-विमर्श केन्द्र में है। मिथक का निर्वाह कवि से अतिरिक्त कौशलता और सजगता की मांग करता है। इसी कमी के कारण मनोज मेहता की लम्बी कविता 'नहीं पीऊँगा विष' (1991) को अनुभूति का कच्चापन ले डूबा है। यहां समुद्र-मंथन की कथा तो नहीं है लेकिन शैवत्व के प्रति कवि की श्रद्धा के कारण आत्मालापी शिव का तनाव और उन्माद रचना पर छाया नहीं है इसीलिए इस कविता का मिथक लुभाता नहीं है। कुछ इसी तरह से मिथक का ज्यों-का-त्यों कथात्मक प्रयोग ओमप्रकाश गुप्त की लम्बी कविता 'कुन्ती और कर्ण' (1987) में हुआ है। जिसमें सिवाय कर्ण की इस सोच के कि 'मुझे विदित होता कृष्णा मेरी भाभी है/सब वचनों को तोड़/लगाता आग सभा में कुछ नया और मौलिक प्रयास नहीं मिलता। ओमप्रकाश गुप्त की एक और लम्बी कविता 'बेताल की आखरी कथा' (1987) में विक्रम-बेताल के आख्यान के साथ बच्चे की फैण्टेसी बुनी हुई है। स्वतन्त्र भारत का यह बच्चा जो भविष्य की धरोहर है, के प्रति कवि का निराशावादी दृष्टिकोण ही झलकता है। उसका मानना है वर्तमान स्थिति अर्थात् आज के माता-पिता 'ऐन मौके पर/अपने ही अंश पर/अधिकार जताने से/सदा चूक जायेंगे।' व्यवस्था को 'डिसआउन' करने की सजा बच्चे को भुगतनी पड़ती है।

मिथक के लिये वस्तु-बोध की जिस तैयारी और भाषा की नयी भंगिमा की ज़रूरत होती है उसका चरम विकास निराला की 'राम की शक्ति-पूजा' (1937) में देखा जा सकता है। बड़ी बात यह है कि निराला ने राम कथा का प्रयोग महाकाव्य के रूप में न करके लम्बी कविता के धरातल पर किया है जो आज भी लम्बी कविता के सर्जक के लिए चुनौती बना हुआ है। मिथक को निजी और समसामयिक प्रासंगिकता के मद्देनजर यहां रखा गया है, 'स्थिर राघवेन्द्र को हिला रहा फिर-फिर संशय' से कवि राम को आम आदमी की तरह तनावग्रस्त दिखाता है। दूसरी तरफ 'है अमानिशा, उगलता गगन घन अन्धकार, खो रहा दिशा का ज्ञान, स्तब्ध है पवन-चार' कहकर आधुनिक मूल्यघाती परिस्थितियों और बाह्य परिवेश के साथ आन्तरिक धरातल पर मचे हाहाकार को रेखांकित करता है। राम यहां दिशाहीन आधुनिक मानव और स्वयं निराला के रूप में, रावण गुलामी के अभिशाप और सीता आज़ादी की आकांक्षा के रूप में व्याख्यायित है। रावण की जय का भय और महाशक्ति का रावण के पक्ष में होना

दरअसल आज की विविध आयामी अराजकता को ही रूपायित करता है। 'राम की शक्ति-पूजा' अन्त्यानुप्रास के कारण परम्परागत काव्य संस्कार के प्रभावित बेशक लगे किन्तु भाषा का विशिष्ट तेवर और राम कथा से जुड़े प्रसंगों का प्रतीकात्मक प्रयोग इसे समस्त छायावादी संस्कार से अलगाकर अलग चमक देता है।

राम काव्य से जुड़ी अहल्या को केन्द्र में रखकर प्रभा खेतान की लम्बी कविता 'अहल्या' (1988) है। नारी दृष्टि एवं मानसिकता के एकायामी पक्ष वाली इस लम्बी कविता में विभिन्न मनोभावों और मनोदशाओं का अभाव है। क्या किसी और के देने से मुक्ति मिल जाती है? यह सवाल नारी के दैहिक-मानसिक शोषण के सन्दर्भ में बार-बार उठता है। शायद इसीलिए कवयित्री की सलाह है, 'मत करो प्रतीक्षा राम की/प्रयास करो' लेकिन वह यह भी जानती है कि अहल्या नारी है, इन्द्र भोगी, गौतम दम्भी और राम मुक्ति दाता 'फिर भी खोजनी पड़ी तुम्हें मुक्ति/पुरुष के ही चरणों में'। इस प्रकार कवयित्री अन्तर्विरोधी विचारों की गुंजलक में फंसकर 'देह और मन पर/लगातार थोपी गयी हिंसा से' मुक्ति का असफल प्रयत्न करती है।

दूसरी ओर इसी विषय को लेकर बलदेव वंशी की लम्बी कविता 'आत्मदान' मात्र अहल्या प्रसंग तक सीमित नहीं रहती। यहां अहल्या बुद्धि, गौतम योग और इन्द्र भोग के प्रतीक रूप में आये हैं। पुरुष की सामन्ती प्रवृत्ति एवं सत्ता के प्रति नारी के विद्रोह के साथ आधुनिक मानव, उसके तनाव और विद्रोह की पहचान यहां की जा सकती है।

मिथक केन्द्रित बलदेव वंशी की एक और कविता 'मन्यु' (1991) शीर्षकों में बंटी खण्डकाव्यनुमा लम्बी कविता है। जिसका परिणाम यह हुआ कि इसके दो शीर्षक 'नया हिंसा का व्याकरण' और 'जंग तुम्हारी नियति' स्वतन्त्र कविता का अहसास कराते हैं। मन्यु जो एक साथ घिर, मर, जी, लड, गल, चल, फैल रहा है। उच्छृंखल हो सीमायें तोड़ रहा है। मन्यु, दीर्घतमा, त्रित, वामदेव जैसे पात्रों को आज के सन्दर्भ से वंशी ने जोड़ा है। आज का मानव वामदेव, त्रित, दीर्घतमा की तरह संकट को झेल रहा है उसे मन्यु के उस विद्रोह की ज़रूरत है जो कर्म के धरातल पर प्रतिफलित होकर संघर्ष चेतना को जगाये।

नयी कविता के दौर में मिथक का बिम्बात्मक, प्रतीकात्मक और फैण्टेसीपरक प्रयोग हुआ है। लम्बी कविता के विकास के समानान्तर मिथक का इतिहास और ऐतिहासिक सन्दर्भों के साथ सन्तुलन देखा जा सकता है। इस दृष्टि से देखें तो धर्मवीर भारती की प्रमथ्यु गाथा' (1959) बच्चन की 'दो चट्टानें अथवा सिसिफस बरक्स हनुमान' (1965) और अज्ञेय की 'असाध्यवीणा' (1961) में मिथक के साथ बिम्ब, प्रतीक और विचार केन्द्र में है जबकि मुक्तिबोध की 'अंधेरे में' (1964) बिम्ब, प्रतीक और फैण्टेसी की आख्यान रहित केन्द्रीय सत्ता है। हालांकि 'अंधेरे में' के तोल्स्तोय, गांधी, तिलक जैसे ऐतिहासिक चरित्र फैण्टेसी के सहारे आज भी अभिव्यक्ति के लिये भटक रहे हैं। इस लम्बी कविता में बंदूक का धड़ाका दरअसल नाथुराम गौड़से का वह बंदूक है जिसने गांधी को मारा और आज व्यवस्था की बंदूक

के रूप में निरीह एवं निर्दोषों को मार रही है। गांधी के हाथ में बच्चा का अर्थ खोलें तो बच्चा जन और उसका भविष्य है। भविष्य का बोझ वर्तमान के कंधों पर भारी पड़ता है इसीलिये बच्चा भविष्य की तरह कोमल और भारी है। प्रतीक, बिम्ब, फैण्टेसी, आख्यानहीन किन्तु ऐतिहासिक चरित्रों से जुड़ते हुए दीर्घकालिक सर्जनात्मक तनाव को लम्बी कविता में कैसे साधा जाता है इस दृष्टि से 'अंधेरे में' एक मॉडल प्रस्तुत करती है। इस लम्बी कविता में इतिहास और मिथक के समन्वय से परिवेशजनित यथार्थ विभिन्न छोरों तक फैला है।

धर्मवीर भारती, अज्ञेय और बच्चन ने विदेशी मिथक को चुना है। 'प्रमथ्यु गाथा' में कृतज्ञताहीन जनसाधारण से पीड़ित होने के बावजूद उदात्त मानव सापेक्ष भावना रखने वाला प्रमथ्यु ज्ञान, प्रकाश स्वाधीनता रूपी अग्नि लाता है किन्तु जनसाधारण के साथ स्वतन्त्र भारत और उसके साथ सम्पूर्ण विश्व इस मानव ज्ञान रूपी अग्नि के जरिए विश्व युद्ध जैसे विध्वंसात्मक कार्य कर रहा है। यूनानी लोक मानस में रचे-बसे मिथकीय काव्यात्मक संयोजन का महत्त्व इस बात में है कि धर्मवीर भारती ने सभी पात्रों द्युतिपर, गीद्ध, प्रमथ्यु, जनसाधारण के वार्तालाप द्वारा पूरी कविता को साधा है। लेकिन इसकी सीमा यह है कि पात्र एक ही ब्यान देते हैं कि जनता कुछ नहीं है। हालांकि कविता के अन्त में प्रमथ्यु का अदम्य विश्वास बना रहता है कि कभी तो जनता में सोया प्रमथ्यु जागेगा। इस लम्बी कविता में घाटी, महल, भेड़, पर्वत आदि के बिम्ब धरती पर फैले अंधकार को रूपायित करते हैं।

'दो चट्टानें : सिसिफस बरक्स हनुमान' का महत्त्व इस दृष्टि से है कि एक ही स्थल पर भारतीय-यूनानी चरित्र से जुड़ी मान्यताओं को बच्चन ने संभाला है। सिसिफस और हनुमान दोनों ही अमरता के इच्छुक हैं। सिसिफस मृत्यु को बन्दी बनाकर और हनुमान, राम से वरदान मांग कर 'शत्रु विनाशक राम,/तुम्हारी कथा लोक में रहे जब तलक/तब तक/जीऊं इसी तरह मैं अमर हो जाना चाहते हैं। भारतीय होने के नाते बच्चन ने सिसिफस के मुकाबले हनुमान की श्रेष्ठता प्रतिपादित की है। सिसिफस जीवन रुपी शिला अर्थात् चट्टान को बोझ और सजा के रूप में ढोता है जबकि हनुमान ने पूरा पर्वत जो जीवन का प्रतिबिम्ब है, हाथ पर उठा रखा है। इस कविता में भी प्रमथ्यु अथवा प्रोमीथियस है किन्तु धर्मवीर भारती का प्रमथ्यु जनता का सहयोग नहीं मिलने से आमतौर पर निराश रहता है जबकि बच्चन का प्रोमीथियस बार-बार ढोयी जाने वाली चट्टान को घिसते देख आशावान् है। 'दो चट्टानें' में देवता पूंजीवादी व्यवस्था, सिसिफस पूंजीवादी व्यवस्था में यान्त्रिक जीवन जीने वाला, प्रोमीथियस मानव को देवतुल्य बनाने के प्रयत्न में संघर्षशील मानव के रूप में सामने आता है।

जापान का ज़ेन सम्प्रदाय जो बौद्ध धर्म की महायान शाखा से जुड़ा है, की कथा में वज्रकीर्ति और केशकाबली का वर्णन आता है। 'असाध्यवीणा' में इस मिथक की अहमियत बिम्ब और प्रतीक से अधिक नहीं है। अज्ञेय ने मिथक का आंशिक और सूक्ष्म सहारा लेकर बिम्बों को संजोते हुए रचना-प्रक्रिया के अनेत स्तरों पर क्रियाशील रहकर 'असाध्यवीणा' में

यह विचार रखा कि सृजन के लिये आत्मदान ज़रूरी है। इस विषय को लेकर लम्बी कविता में अभी काफी संभावनायें हैं। 'वज्रकीर्ति' गुरु, 'केशकम्बली' साधक-कलाकार, 'राजा' शब्दानुशासक-काव्यानुशासक, 'रानी' सभ्यता-आवरण से सजी आधुनिक मानव की शुष्क बुद्धि, 'वीणा' कला या कला माध्यम, 'कम्बल' अहं, 'गुहागेह' कलाकार के आत्मबोध, 'किरीटी' तरू मानव परम्परा की विशालता बाह्य सामाजिक जीवनानुभव का प्रतीक है। इस कविता में बिम्ब खासतौर पर वीणा बजने से पहले के चाक्षुष बिम्ब और वीणा बज उठने के बाद के ध्वनि बिम्ब कला, कलाकार और सहृदय के त्रिआयामी सम्बन्ध को जोड़ते और खोलते हैं और साथ ही सांस्कृतिक जड़ों तक पहुंचते हैं।

पात्र अथवा कथा के स्थूल एवं प्रत्यक्ष उल्लेख के बिना पाठकीय स्मृति में बसा कृष्ण का अवतारी रूप नागार्जुन की लम्बी कविता 'हरिजन गाथा' (1980) में जन्मे शिशु कलुए के माध्यम से अकस्मात् कौंध जाता है। 'श्याम सलोना अछूत शिशु/हम सबका उद्धार करेगा/ अजी, यही सम्पूर्ण क्रान्ति का बेड़ा सचमुच पार करेगा/हिंसा और अहिंसा दोनों/बहनें इसको प्यार करेंगी'। सामूहिक मनस् में बसे कृष्णावतार के मिथकीय आधार पर भविष्यवाणी के सहारे यहां आशावादी स्वर गूंजा है। 'सम्पूर्ण क्रान्ति' से जयप्रकाश नारायण के नारे पर आधारित समाजवाद का स्वप्न कवि ने देखा है। अवसर के अनुकूल हिंसा अर्थात् बन्दूक और जवान, उग्र तेवर, गरम दल अथवा मार्क्सवाद और अहिंसा अर्थात् हल और किसान, नरमी का व्यवहार, नरम दल अथवा गांधीवाद का दामन थामना आज के युग की मांग है। हिन्दी की मिथकीय लम्बी कविताओं में 'हरिजन गाथा' अपेक्षाकृत सरल बेशक हो लेकिन सपाट नहीं है। इसकी गद्यात्मकता में छिपी काव्यगत एवं अर्थगत लय पाठक को अन्त तक अपने साथ बहाये और बनाये रखती है। संत गरीबदास द्वापर युगीन आकाशवाणी की भांति भविष्यवाणी करते हैं जिसके कारण पूरी कविता में वक्तृ शैली है जो कथन का जरिया मात्र है इसीलिए नागार्जुन से नाटकीयता चाहे पात्र के धरातल पर हो अथवा घटना के, छूटने नहीं पायी है।

दूसरी ओर प्रभा खेतान की लम्बी कविता 'कृष्णधर्मा मैं' (1986) में कृष्ण को मात्र साक्षी रूप में सम्बोधित किया गया है। कवयित्री ने अपूरित इच्छा का साक्षी कृष्ण को ज़रूर बनाया हो लेकिन इस अपूर्णता से जन्मे तनाव का कहीं अता-पता नहीं। केवल एक स्थल पर यह लम्बी कविता आज के परिवेश से जुड़ती है, 'कहीं दु:शासन कहीं दुर्योधन/कहीं अंधा धृतराष्ट्र आदमियत के खिलाफ खड़े/हत्यारों की एक पूरी जमात' किन्तु वस्तु-बोध का अभाव और महाभारत के पात्रों का इतिवृत्तात्मक हवाला रचना में किसी प्रकार की गहराई नहीं आने देता।

मिथक का निर्वाह आद्यन्त न करके आंशिक रूप में करना बसन्तकुमार परिहार की लम्बी कविताओं की खासियत है। महाभारत से जुड़े प्रसंग एवं पात्र को वे आज के सन्दर्भ से जोड़ते हैं और आज के संवेदनाशून्य परिवेश में इनसे जुड़े मिथक का मारक प्रयोग करते हैं, 'हारे हुए/जुआरी पांडवों जैसे लोग/कौरवी दरबार में/लुटती हुई अस्मतों को देखते हैं-/

इस धांधलबाजी में/शायद मर चुके हों कृष्ण/ऐसा उठ रहा है शोर/चारों ओर'। 'आरम्भ होती है कविता' (2000) शीर्षक लम्बी कविता की इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि आज की स्थितियाँ कृष्ण के समय से अधिक घातक है क्योंकि आज न कोई अवतारी कृष्ण है और न ही हम में ऐसी कोई संभावना है।

उत्तर आधुनिक दौर में मीडिया की व्यावसायिक खबरों और व्यवस्था के झूठ ने सब कुछ गैर ज़रूरी और बेमानी कर दिया है। परिहार की ही एक और लम्बी कविता 'भ्रमों का जंगल' (2000) में समस्या यह है कि 'आंख के अंधे धृतराष्ट्र को/महाभारत का युद्ध देखने के लिए/संजय की वाणी की/मिल सकती है सुविधा/किन्तु/गीता का उपदेश सुनने के लिए/कान पता नहीं/किस दुकान से उधार मिलते हैं'। स्पष्ट है कि आज गीता (कर्म) के अनुसार फल का कोई मोल नहीं रहा। हम जानते हैं कि मिथक के बहाने कवि इतिहास को दस्तक देता हुआ आज की अवांछित और अराजक परिस्थिति को समाकलित करता है। परिहार 'उन्नीसवां अध्याय' (1987) शीर्षक लम्बी कविता में एक बार फिर स्पष्ट करते हैं कि उपभोक्तावादी संस्कृति में अधिकाधिक संग्रह शक्ति के कारण डोली और अर्थी का भेद मिट गया है, 'चौराहे पर खड़ी अर्थी/डोली के कानों में फुसफुसा रही है/गीता का उन्नीसवां अध्याय/जिसमें आत्मा की नहीं/इच्छा की अमरता की बात कही गयी है। मूल गीता में अठारह अध्याय हैं किन्तु कवि जब गीता के उन्नीसवें अध्याय की बात करता है तो स्पष्ट है कि आधुनिक दौर की ज़रूरत और परिवर्तन के अनुसार एक अतिरिक्त अध्याय को रचने की ज़रूरत का अहसास कराता है। उसका मानना है कि 'महाभारत का युद्ध/अठारह दिनों तक ही/सीमित नहीं रखा जा सकता।' आदमी की तरह जीने के लिए पूरी जिन्दगी खर्च करनी पड़ती है। जीवन के अन्तिम क्षणों तक चलने वाला यह संघर्ष भला अठारह दिनों में सीमित होकर सब कुछ के प्रति आश्वस्त कैसे कर सकता है ? जाने हुए शब्दों, सन्दर्भों, ग्रन्थों को फिर से पहचानने की ज़रूरत का अहसास कवि कराता है। धार्मिक ग्रन्थों के अनुकरण मात्र से वर्तमान व्यवस्था का सामना संभव नहीं है। शंकर धोबी की कर्कश गालियों और पार्वती की दर्द भरी चीखों से बेखबर शंकर का बैल 'मुझे, क्या' के भाव से जुगाली करता रहा। तब कवि को 'शंकर धोबी से भी अधिक/उस बैल पर क्रोध आया था/और लाठी से पीट-पीटकर/उसकी चमड़ी उधेड़ने को मन चाहा था......'। ध्यान देने की बात यह है कि ऐसी स्थिति में कवि अथवा बुद्धिजीवी की भूमिका अपने में मस्त, जुगाली करते उस बैल से ज़्यादा महत्त्व की नहीं होती क्योंकि जो क्रोध शंकर पर आना चाहिए था वह एक मूक दर्शक (कवि, बुद्धिजीवी) को दूसरे मूक दर्शक (बैल) पर आता है। क्या आज हम इसी प्रकार नपुंसक हो कर अपने परिवेश को छलते और बलात्कृत होते हुए नहीं देख रहे हैं ?

स्थितियाँ जब इतनी विकट मारक और घातक हों तब भाषा का शिष्ट व्यवहार कभी-कभी गैर ज़रूरी हो जाता है या पीछे छूट जाता है। कुछ ऐसा ही राजकमल चौधरी के साथ 'मुक्ति-प्रसंग' (1967) में हुआ है। इस लम्बी कविता में उग्रतारा के जन्म के मिथक को प्रकृति और नारी के विविध रूपों के प्रतीक रूप में ग्रहण किया गया है। उग्रतारा भोग,

मातृशक्ति, महामुद्रा, आदिम एवं शाश्वत नारी, प्रेयसी, मां, अन्नपूर्णा संरक्षिका एक साथ है। यहीं पर शव और शिव, अघोरी और शाक्त साधना के प्रकरण में तन्त्र साधना के अन्तर्गत नारी के ऐसे विविध रूप आ गये हैं जिससे यह कविता भाषा के शिष्ट मिजाज की परवाह न करते हुए एब्सर्ड दर्शन की प्रतिनिधि लम्बी कविता बन जाती है। देह से देश, अस्पताल से सम्पूर्ण विश्व तक फैले असाध्य रोगों और व्यभिचार का जैसा खुला वर्णन इस लम्बी कविता में हुआ है उससे एकबारगी ऊबकाई बेशक आये किन्तु है वह आज के दौर का दहकता दस्तावेज़ ही।

हिन्दी की मिथकीय लम्बी कविताओं को देखें तो फ़ैमेनिज़्म के आज के दौर में स्त्री और उससे जुड़े सरोकार कविता में भी आ गये हैं। सुखद पहलू यह है कि इस विषय से जुड़ी लम्बी कविताएं आलोकधन्वा की 'ब्रूनो की बेटियां' (1989) और नरेन्द्र मोहन की 'प्रिय बहिणा........' (2006) तथाकथित स्त्रीवादी विमर्श से कोसों दूर खड़ी हैं। 'ब्रूनो की बेटियां' में ज्योर्दानो फिलिप्पो ब्रूनो से जुड़ी वास्तविक घटना पूरी कविता को संचालित करती है। 16वीं शताब्दी में चर्च के वर्चस्व और धार्मिक रूढ़ियों को चुनौती देने वाले इस शख़्स को जिन्दा जला दिया गया। आख्यान और कथा-सूत्रों को लेकर बहुत-सी लम्बी कविताएं लिखी गयीं किन्तु इस लम्बी कविता का वैशिष्ट्य इस बात में है कि पूरी कविता में कहीं भी ब्रूनो का नाम नहीं है फिर भी वह कविता के केन्द्र में है। पाद टिप्पणी के रूप में ब्रूनो की हत्या का कारण पूरी कविता के माहौल को मौत की दहशत से भर देता है जो वैचारिक अन्विति का काम करता है। आलोकधन्वा ने जब जिन्दा जली औरतों को देखा तो वर्तमान की यह घटना ब्रूनो से जा मिली और कवि के सामने जलता हुआ उसका दौर खड़ा हो गया। ब्रूनो और उसकी बेटियाँ दरअसल समाज की परिवर्तनकारी शक्तियों, बदलाव की इच्छा रखने वालों का प्रतीक हैं। उन्हें जलाने का काम दमनकारी शक्तियां करती हैं। इस टकराव में आमने-सामने खड़े हैं-मजदूर और पूंजीपति, मजदूर औरतें और भूमिपति, शोषित और शोषक, गांव और शहर, व्यक्ति और व्यवस्था, रूढ़ि और प्रगतिशीलता। इन दोनों के बीच एक ध्रुव सत्य है कि विद्रोही मार या जला दिया जाये किन्तु विद्रोह चेतना को मारना तो दूर की बात, दबाया तक नहीं जा सकता।

कुछ ऐसी ही संघर्ष चेतना लिये और उसकी कीमत चुकाती 'प्रिय बहिणा......' है। नरेन्द्र मोहन की इस लम्बी कविता में केन्द्रीय चरित्र महाराष्ट्र के कोलाहपुर प्रान्त की संत कवयित्री बहिणा बाई है। केन्द्रीय घटना है पति की प्रताड़ना और तुकाराम के अभंगों का एक साथ विरोधी साहचर्य के रूप में आना। दूसरे स्तर पर यह कविता स्त्री और उसकी स्थिति से जुड़कर कालावधि के अन्तराल को पाटती हुई मध्यकाल की नारी को आज की नारी के रूप में खड़ा करती है। नारी अस्मिता के साथ व्यक्ति की पहचान और उस पहचान को स्थापित करने की प्रक्रिया में आने वाले व्यवधानों और संघर्ष चेतना को सामने लाती है। अन्य धरातल पर यह रचना-प्रक्रिया में भी जुड़ती है।

मिथकीय लम्बी कविताओं में एक नया विषय कश्मीर विस्थापन से जुड़ा है। पहले अपने देश का विभाजन और अब अपने ही देश में विस्थापन। आज़ादी से लेकर आज तक यह सिलसिला थमा नहीं है। इसी का सिरा पकड़ते हुए अग्निशेखर ने नीलमत पुराण के आख्यान का मिथकीय प्रयोग लम्बी कविता 'सतीसर' (2006) में किया है। यह विस्थापन विविध कारणों से है जिसका सामना कभी बाढ़, कभी युद्ध के परिणाम रूप में करना पड़ता है। इन दैवीय प्रकोपों से तो निपटा भी जाये और देवेच्छा मानकर संतोष भी कर लिया जाये किन्तु आतंकवाद, अराजक व्यवस्था, शासकीय तानाशाही को सहने की विवशता से उपजे विस्थापन की टीस इतिहास बन जाती है। 'सतीसर' में जलोद्भव के आतंक से नागों की रक्षा के लिए कश्यप ऋषि देवताओं का आह्वान करते हैं। नागों का प्रतिनिधि नील नाग पलायनग्रस्त, चिन्तित बुद्धिजीवी है। जलोद्भव आतंक का प्रतीक है जिसके कारण निर्वासन और विस्थापन का दंश नील नाग जैसे बुद्धिजीवी को झेलना पड़ रहा है। 'सतीसर' वर्तमान स्थिति, कश्मीर, दूसरे मायने में डल झील है। विष्णु सर्व शक्तिमान, अराजक--तानाशाह शासक है। गरूड़ इसकी शक्ति है जो नागों का शत्रु है। अब विडम्बना देखिये कि कश्यप ऋषि जो लोक कल्याण के प्रार्थी हैं नागों की रक्षा के लिए उसी विष्णु (पालनकर्ता अपने-आप में कितना हास्यास्पद लगता है) की शरण में जाते हैं जिसके पास नागों का शत्रु गरूड़ है। नाग जो मनुष्य है, वह इस सारे जाल में विवशता भरी छटपटाहट और आत्म हनन के लिए अभिशप्त हैं। 'सतीसर' का मिथक निर्वासित-विस्थापित के साथ उन सभी की मानसिकता से जुड़ता है जिन्हें सर्वथा अवांछनीय स्थितियों में आत्म विरोधी आचरण करना पड़ता है। इसके बावजूद कवि विश्वास प्रकट करता है 'रक्षा करो अपने मूलों की/ये मूल ही बचायेंगे हमें भविष्य में।' कवि चिर विरोध और उसके अधिकार को सर्वथा महत्त्वपूर्ण मानता है, 'मुझे नहीं स्वीकार्य/ पराजय संस्कृति की/माना अजेय हैं देव फिलहाल/हम बचायेंगे/अपना बीज/और विरोध अपना'। अन्ततः यह विश्वास किया जा सकता है कि कश्मीर और यह धरती एक बार फिर स्वर्गस्वरूपा होंगी।

उत्तर आधुनिकता, भूमडण्लीकरण, बाज़ारवाद के चलते मानवीय सरोकारों, मूल्यों और सांस्कृतिक जड़ों के खोखला होने का भय आज के रचनाकार को अतीत की ओर ले जाता है। कुछ ऐसी ही चिन्ता भगवत रावत की लम्बी कविता 'जे. अल्फ्रेड प्रूफ्राक' बनाम प्यारेलाल (2008) में झलकती है। अंग्रेज़ी की मूल कविता लव सॉग ऑव जे. अल्फ्रेड प्रूफ्राक' में टी, एस. इलियट ने अपने समय की पश्चिमी सभ्यता के सवालों का जो सामना किया था भगवत रावत उसी का सूत्र थामकर स्पष्ट करते हैं कि पश्चिमी सभ्यता ने उससे कुछ पाठ नहीं सीखा। इतिहास देख चुका है 1939 में नस्लवाद का सबसे घिनौना चेहरा जब गैस चैम्बरों में कीड़ों-मकोड़ों की तरह नरसंहार हुआ। इसके बावजूद 'मनुष्यता की दुहाई देते-देते/सभ्यता का यह कौन-सा रूप है जो पल भर में/नष्ट कर देता है अफगानिस्तान और ईराक'। सत्य और अहिंसा महत्त्वपूर्ण होते हुए भी कैसे और क्यों बेमानी हो गये इस की खोज करता हुआ कवि अतीत में लौटता है। 'अब वे दिन कहां प्रूफ्राक! जब/एक निहत्था आदमी सिर्फ एक

लँगोटी लगाए/ऊपर से नीचे तक अस्त्रों-शस्त्रों से सजी-संवरी/सभ्यता के आगे चुनौती बन कर खड़ा हो जाता था। और पूरी सभ्यता सक्ते में आ जाती थी' लेकिन इसी से जुड़ा दूसरा सच यह भी है कि आज़ादी मिलते ही उसे गोली मार दी गयी। सब कुछ बिकने वाले इस बाज़ार में कवि की सलाह है कि 'चलो-चलें वहां/जहां अभी भी चूल्हे पर बाजरे की मोटी रोटी/सिक रही होगी/हरी मिर्चों के साग और गुड़ के साथ/एक बार उसे खाकर देखो तो/दुनिया में तुम्हारा विश्वास वापस आ जायेगा/सांस्कृतिक जड़ों की इसी तलाश और जमीनी हकीकत से जोड़ने का काम कवि मिथक के जरिए करता है।

इन मिथकीय लम्बी कविताओं से अनुमान लगाया जा सकता है कि मूल्यघाती शक्तियों के वर्चस्व के साथ मूल्यों को बचाये और बनाये रखने के संघर्ष में मिथक संजीवनी का काम करते हैं। वर्तमान में रहकर अतीत को खंगालते हुए पुन: वर्तमान तक पहुंचते न पहुंचते पूरा-प्रसंग एवं पात्र लम्बी कविता में जिन नवीन संदर्भों और अर्थों को संजोते हैं उससे कवि, पाठक एवं आलोचक के लिए सामूहिक मनस् से जुड़ने के अवसर सहज होते जाते हैं। यही हमेशा से मनुष्य और साहित्य की ज़रूरत और उद्देश्य भी रहा है। इस परिदृश्य में मिथकीय लम्बी कविताओं का महत्त्व निर्विवाद रूप से बढ़ जाता है।

ooo

सीनियर असिस्टेण्ट प्रौफेसर
स्नातकोत्तर हिन्दी-विभाग,
जम्मू विश्वविद्यालय,
जम्मू-180006

डा० राही के उपन्यासों में राष्ट्रीय दृष्टिकोण

❑ *डा० चन्द्रशेखर तिवारी*

कहा जाता है कि ऋषियों, मुनियों, वीरों और महापुरुषों की कोई जाति नहीं होती। उनका कोई धर्म नहीं होता। उनका कोई मजहब नहीं होता। उनका कोई अपना और पराया नहीं होता। उनका गुण, उनका शील अर्थात् उनका व्यक्तित्व ही उनका सब कुछ हुआ करता है, तभी तो 'रश्मिरथी' का कर्ण कहता है--

'जाति-जाति रटते केवल जिनकी पूंजी पाखण्ड,
मैं क्या जानूं जाति, जाति हैं ये मेरे भुजदण्ड।
पूछो मेरी जाति शक्ति हो तो मेरे भुजबल से,
रवि समान दीपित ललाट से और कवच-कुण्डल से।
पढ़ो उसे जो झलक रहा है मुझ में तेज प्रकाश,
मेरे रोम-रोम में अंकित है मेरा इतिहास।*

यद्यपि राही का सम्पूर्ण जीवन राष्ट्र को समर्पित रहा। पर पता नहीं क्या बजह है कि उन्हें हमेशा शक की निगाह से देखा गया। वे उपन्यासों में बार-बार सफाई देते रहे, साक्ष्य प्रस्तुत करते रहे कि मैं गंगौली का हूं, मैं गाजीपुर का हूं, मैं हिन्दुस्तान का हूं पर उनकी इस दलील को लोग मानने के लिए तैयार नहीं। पुस्तकों में पढ़ने-देखने को भले ही मिल जाये कि हाथ कंगन को आरसी क्या ? पर वास्तविकता यहां इसके ठीक उल्टे है। यहां हर हाथ को आरसी दिखाना पड़ता है। अन्यथा क्या ज़रूरत थी राही को यह लिखने की कि "मैं सैयद मासूम रज़ा आब्दी, वल्द सैयद बसीर हसन आब्दी बहुत परेशान हूं कि मैं कहां का रहने वाला हूं। आजमगढ़ का या गाजीपुर का ? मेरा घर गाजीपुर के एक गांव गंगौली में है या आजमगढ़ के एक गांव ठेकमा बिजौली में, जिसे आज तक मैंने देखा भी नहीं है ? यह मान लेने के बाद भी कि मेरे दादा मीर अली मुहम्मद साहब, बिजौली, जिला आजमगढ़ के थे, बिजौली का नाम सुनकर मुझे गुदगुदी नहीं होती। आजमगढ़ मेरे लिए हिन्दुस्तान के हजारों शहरों में से एक शहर है, और बिजौली एक गांव। रहे होंगे मेरे दादा वहां के। मैं तो गंगौली का हूं। मैं गंगौली ही को

---

* *बहुत हद तक कर्ण का ही चरित्र लेकर जन्मे डा. राही को भी जीवन-भर ताने सहने पड़े। उपेक्षा के दंश का शिकार होना पड़ा।*

जानता हूं।.......मैं यह मानता हूं कि मेरे दादा आजमगढ़ से आए थे। गाजीपुर मेरे लिए बस एक शहर या गंगौली मेरे लिए बस एक गांव नहीं है। वह मेरा शहर और मेरा गांव है। और मेरा मतलब समझ गए होंगे। और मेरे दादा तलवार बांधकर नहीं आए थे गाजीपुर।.........मैं केवल गाजीपुर का हूं। मैं गंगौली का हूं। गंगौली मेरे अब्बा का ननिहाल है। मुमकिन है कि अब्बा की वफादारी बिजौली और गंगौली के बीच में तकसीम हो, लेकिन मेरी वफादारी तकसीम नहीं है।.......मैं गया अहीर,. हरिया बढ़ई और कोमिला चमार का हूं। मेरे दादा आए रहे होंगे आजमगढ़ से, क्योंकि सभी के दादा-परदादा कहीं से आए होंगे।'' पर हाय रे दुर्भाग्य इतनी निष्कलुष सफाई के बाद भी गंगौली और गाजीपुर के लोगों ने उन्हें गंगौली और गाजीपुर के होने का प्रमाण नहीं दिया। अब यहां राही के गंगौली और गाजीपुर शब्द के थोड़े से अर्थ-विस्तार की जरूरत है तब जाकर हमें उनकी पीड़ा कहीं ठीक से समझ में आ पायेगी। उस पीड़ा को पकड़ने के लिए ही मैंने बड़े उद्धरण को उद्धत करने का लोभ-संवरण नहीं कर पाया हूं।

यह पीड़ा कमोवेश उनके सभी उपन्यासों में दिखाई देती है। डॉ. राही का यह कथन ''मेरा देश-प्रेम मेरे जीने का ढंग है, मेरे जीने का आधार है।......मेरे सारे उपन्यास देश-प्रेम की परिभाषायें हैं।''[1] कुछ इसी तरह का सबूत पेश करता है। ऐसे मौके पर मुझे किसी शायर की चंद पंक्तियां याद आती हैं जो कुछ इसी तरह की पीड़ा को व्यक्त करती हैं --''हम खून की किश्तें तो कई दे चुके लेकिन ऐं खाक़े वतन कर्ज़ अदा क्यों नहीं होता ?''

देश में कुछ कट्टरवादी संगठनों के द्वारा उनकी निष्ठा पर जब उंगली उठाई जाती है तब वे जबाब स्वरूप दृढ़ता के साथ लिखते हैं, ''सैय्यद मासूम रजा होने के बाद भी मैं हिन्दुस्तानी हूं। क्योंकि मैं ही नहीं मेरे बाप, दादा, परदादा भी मेरे ही तरह हिन्दुस्तान में ही पैदा हुए थे।''[2] ''गंगौली से मेरा संबंध अटूट है। वह एक गांव ही नहीं है, वह मेरा घर भी है। 'घर'--यह शब्द दुनिया की हर बोली और हर भाषा में है, और हर भाषा में यह उसका सबसे खूबसूरत शब्द है। इसलिए मैं उस बात को फिर दुहराता हूं। मैं गंगौली का हूं क्योंकि वह मेरा घर भी है। 'क्योंकि', यह शब्द कितना मजबूत है.....और कोई तलवार इतनी तेज नहीं हो सकती कि इस 'क्योंकि' को काट दे। और जब तक कि यह क्योंकि जिन्दा है, मैं सैय्यद मासूम रजा आब्दी गाजीपुर का ही रहूंगा, चाहे मेरे दादा कहीं के भी रहे हों। और मैं किसी को यह हक नहीं देता कि वह मुझ से यह कहे कि राही, तुम गंगौली के नहीं हो। क्यों चला जाऊँ साहब मैं ? मैं तो नहीं जाता।''[3]

समझ में नहीं आता, आखिर कौन उनसे यह सब प्रमाण मांग रहा था ? किसके लिए और क्यूँ उनको यह सब सफाई देनी पड़ी ? प्रत्यक्ष भले ही न दीखे पर आखिर कोई-

---

1. *लगता है बेकार गये हम - सं. प्रो. कुंवरपाल सिंह, पृष्ठ-62।*
2. *क्षितिज, अंक-1996-97, 1*
3. *अभिनव कदम (अंक 6-7) सं. जयप्रकाश धूमकेतु, पृष्ठ-24।*

न-कोई वजह तो होगी ही जिसके चलते उन्हें यह सब लिखना पड़ रहा था। क्या बाबा तुलसी भी इसी तरह की पीड़ा से व्यथित होकर लिखे थे कि -'धूत कहो, अवधूत कहो, राजपूत कहो, जुलहा कहो कोऊ, काहू की बेटी से बेटा न व्याहण काहू की जांति बिगारब न सोऊ?' डॉ. राही की पीड़ा से अपने को जोड़ते हुए कुशल समीक्षक डॉ. शिव कुमार मिश्र जी लिखते हैं, "इस उपन्यास ('आधा गांव') को मैंने बीसियों बार पढ़ा है, उसकी पंक्ति-पंक्ति से छलकने वाले राही मासूम रजा के उस जज़बाती दर्द को शिद्दत से महसूस किया है, जो उस पूरे उपन्यास को शुरू से आखिर तक तर किए हैं। उपन्यास से दो-गुना बार मैंने उसकी भूमिका पढ़ी है, एक ऐसी भूमिका, जो उपन्यास के सैंकड़ों पन्नों के बाद उपन्यास से छलकते उस सारे दर्द के निचोड़ को लेकर अचानक सामने आ जाती है। इस भूमिका का एक-एक हर्फ राही ने स्याही से नहीं अपने आंसुओं से, अपने खून से लिखा है। जो पढ़ने वाले के मन पर बराबर दस्तक देता रहता है, जो सोते-जागते उसे झिंझोड़ता है, दर्द की अपनी तासीर के चलते भी, और इस नाते भी कि राही को उसे लिखना पड़ा। उसे लिखने को मजबूर होना पड़ा।"[1] "शब्दों के एक-एक पारे से छलक रहे राही के दर्द का अनुमान किया जा सकता है। दर्द इसी बात का कि राही को यह सब लिखना पड़ा। बार-बार दुहराना पड़ा कि मैं गंगौली का हूं। मैं गंगौली का हूं। आखिर क्यों ?........मुश्किल नहीं है--'इस भूमिका में आजमगढ़ और गाजीपुर की, बिजौली और गंगौली की व्यंजनाओं को समझना। जब किसी को संदेह के घेरे में ले लिया जाये, जब उससे बार-बार अपनी देशभक्ति और देशप्रेम की सफाई देने को कहा जाये, उसके भारतीयकरण की बात की जाये तो ऐसा ही दर्द आत्मा की भीतरी पर्तों से उपजता है, उस आदमी की आत्मा की भीतरी पर्तों से उपजता है जिसका पोर-पोर, जिसके जिस्म और जेहनियत का एक-एक रग-रेशा अपनी धरती, अपने देश, अपने शहर और अपने गांव की मिट्टी की गमक लिए हो, जिसका तन और मन उस मिट्टी में डूबा-नहाया हो, जो उस धरती के हर्ष-उल्लास, दुख-दाह, ताप-त्रास का साक्षी और भोक्ता हो।"[2] आश्चर्य होता है कि जिस व्यंजना को समझना शिव कुमार मिश्र जी मुश्किल नहीं मान रहे हैं वह अब तक अधिकांश लोगों की समझ में नहीं आयी है। काश, ईश्वर सबकी विवेक-जागृति पैदा करते और शिव कुमार जी की व्यंजना को लोग समझ पाते। मैं दावा करता हूं कि जिस दिन वह व्यंजना सब की समझ में आ जायेगी उस दिन सभी रगड़े-झगड़े, ईर्ष्या-द्वेष स्वत: समाप्त हो जाएंगे और लोग एक बार फिर एक-दूसरे के करीब आ जाएंगे। देखें वह सुदिन कब आता है, सुघड़ी कब आती है जब लोग डॉ. राही और डॉ. शिवकुमार मिश्र जी के दर्द को समझ पाते हैं।

उनकी राष्ट्रीयता का आधार हिन्दू-मुस्लिम एकता पर बल, हिन्दी और उसकी तमाम बोलियों का उर्दू के साथ तादात्म्य और उर्दू की देवनागरी लिपि में लिखने का प्रयास था। मजहबी उन्माद फैलाने वालों और लोगों को आपस में लड़ाने वालों का राही ने जमकर प्रतिकार किया। आपसी बैर-विद्वेष के पीछे वे धर्मान्धता को जिम्मेदार ठहराते हैं।

1-2. अभिनव कदम-सं. जयप्रकाश धूमकेतु, पृष्ठ-22 (अंक-06-07)। पृष्ठ 24

गंगौली के ब्याज से राही पूरे भारत का चित्र खींचते है और उसकी वर्तमान दशा पर प्रकाश डालते हैं। उनकी ख्याति का आधार बना उपन्यास 'आधा गांव' इस तरह के चित्रणों से भरा पड़ा है जिसके विभिन्न पात्रों के मुख से राही पाकिस्तान-निर्माण का खुल्लम-खुल्ला विरोध प्रकट कर अपने राष्ट्र-प्रेम का उदाहरण देते हैं। 'टोपी शुक्ला' में तो यहां तक लिखते हैं कि ''जिस देश की यूनिवर्सिटी में यह सोचा जा रहा हो कि गालिब सुन्नी थे या शिआ और रसखान हिन्दू थे या मुसलमान, उस देश में पढ़ाने का काम मैं नहीं करूंगा।''[1] इस उपन्यास में डॉ. राही ने दो सम्प्रदायों को पृथक् करने वाले दकियानूसी विचारों की सफल शल्य-क्रिया की है। मधुरेश ने ठीक ही लिखा है कि 'टोपी शुक्ला' हिन्दू-मुस्लिम सम्बन्धों की समस्या को उसके सही सन्दर्भ में देखने और चित्रित करने का एक साहसपूर्ण प्रयास है।

भारतीय समाज में आज भी यह एक कटु सच्चाई है कि इतने लम्बे समय तक एक साथ रहने पर भी एक-दूसरे को ठीक से समझ नहीं पाये हैं। पहले जमाने में कहा जाता था कि यह सब अंग्रेज़ों की देन हैं। अर्थात् अंग्रेज़ों की 'फूट डालो और राज करो' की नीति हिन्दू-मुस्लिम एकता में बाधक है। अंग्रेज़ों के चले जाने के बाद ये स्थितियां स्वयंमेव बदल जायेंगी। पर कहां बदलीं ? कहां कुछ ठीक हुआ। समस्या जस-की-तस, जहां- की-तहां है। आज भी लोग एक-दूसरे को शक की निगाह से देखते हैं। परस्पर विश्वास का अभाव है।

फिरकापरस्त ताकतों और अलगाववादी संगठनों का राही के उपन्यासों में जबरदस्त विरोध दीखता है। दिग्भ्रमित लोगों के खिलाफ 'आधा गांव' के सीधे-सादे ग्रामीण पात्रों द्वारा राही ने जो विरोध दर्ज कराया है वह उनकी राष्ट्रीयता का अपने-आप में प्रमाण है। उपन्यास के एक पात्र अब्बू मियां की निगाह में पाकिस्तान बनने में जिन्ना का लाभ है। छिकुरिया छाती ठोंककर विरोध करता है। रब्बन बी इस माटी मिले की समाप्ति चाहती है। सितारा को समझ में नहीं आता कि यह जिन्ना कैसा शीआ है कि हिन्दुस्तान के खिलाफ है ? इस तरह की बातें कथाकार की राष्ट्रीय पीड़ा को बखूबी उभारती हैं।

समाज की सुख-शांति में कंकड़ फेंककर अकारण लहरें उठाने वालों को राही रंच मात्र भी पसंद नहीं करते। नतीजा वे लोगों की आंखों की किरकिरी बन जाते हैं। जान के लाले पड़ जाते हैं। हर जगह विरोध होता है। उपेक्षा के दंश झेलने पड़ते हैं। मजबूर होकर प्राणों की रक्षा के लिए साहित्य के बहाने सरकार से गुहार लगाते हैं। लिखते हैं, ''मुझे धीरे-धीरे धर्म से नफरत होती जा रही है। क्या सरकार मेरी रक्षा की जिम्मेदारी लेगी ? मैं एक झल्लाया हुआ आदमी हूं। क्योंकि मुझे अपना पता नहीं मिल रहा है।''[2] पाकिस्तान बंटवारे के शुरू से ही विरोधी रहे राही लिखते हैं, ''यह नफरतें देश के बंटवारे की औलादें हैं और अब यह जवान हो गयी हैं। हम आज भी वहीं खड़े हैं जहां 15 अगस्त सन् 47 को खड़े थे।''[3]

---

1. *टोपी शुक्ला - डॉ० राही मासूम रजा, पृष्ठ 13*
2. *खुदा हाफिज़ कहने का मोड़-सं. प्रो. कुंवरपाल सिंह पृष्ठ 144*
3. *लगता है बेकार गये हम-सं. प्रो० कुंवरपाल सिंह पृष्ठ 90*

टोपी शुक्ला को हिन्दू होने के बावजूद मुस्लिम यूनिवर्सिटी में पढ़ने की बजह से नौकरी नहीं मिलती।[1] गालिब, मीर, रसखान और जायसी को हिन्दू मानने के कारण टोपी को साक्षात्कार में फेल कर दिया जाता है। व्यवस्था से खिन्न हो वह कहता है, 'जिस देश की यूनिवर्सिटी में यह सोचा जा रहा हो कि गालिब सुन्नी थे या सिआ और रसखान हिन्दू थे या मुसलमान, उस देश में पढ़ाने का काम मैं नहीं करूंगा।''[2] स्कूलों, मदरसों, कालेजों और यूनिवर्सिटी में पढ़ने वाले लड़कों की सोच पर उन्हें आश्चर्य होता है कि यह लड़के फिजिक्स पढ़ते हैं और कापी पर 'ॐ' या 'विसमिल्लाह' लिखे बिना सवाल का जबाब नहीं लिखते।[3] इस तरह की संकीर्ण सोच जब शिक्षण-संस्थाओं में घुस गयी हो तो बैर-विद्वेष तो बढ़ेगा ही। इफ्फन शंकर को मानता था, उनकी पूजा करता था। सकीना जो एक मुस्लिम स्त्री (इफ्फन की पत्नी) थी और हिन्दुओं के पवित्र त्योहार 'राखी' को मानती थी, पर किसी को राखी नहीं बांध पाती। सभी जानते थे कि वह हिन्दुओं से सख्त नफरत करती है जबकि वास्तविकता इसके ठीक उलट थी। उसके बक्से में एक के ऊपर एक तहियाकर रखीं कुल चौदह राखियां कुछ और ही कहानी कहती थीं। अंत में किसी तरह वह राखी टोपी को भेज ही देती है जिसके पीछे अपनी बिरादरी के लोगों द्वारा उसे तमाम अपमानजनक बातें सुननी पड़ती हैं। (यहीं यह भी स्पष्ट कर दूं कि राखी बांधने की इच्छा के बावजूद वह टोपी के हाथ का छुआ खाना नहीं खाती।) राही इस उपन्यास में इन दोनों चरित्रों अर्थात् निश्चल सकीना और संकीर्णता, धर्मान्धता, रूढ़ियों, नफरत में जीने वाले लोगों में सच्चा कौन है। शायद किसी के पास जबाब नहीं।

दो वर्गों के बीच की खाई को पाटने के परिणाम स्वरूप उन्हें सदैव अपने ही वर्ग के लोगों की उपेक्षा का दंश झेलना पड़ा। किसी ने उन्हें नहीं अपनाया। पर इसी के साथ यह भी सच है कि जो किसी का नहीं होता वह सबका होता है और डॉ. राही भी आज सर्वजन के बन चुके हैं। इसके पीछे सबसे बड़ी बजह यह है कि अपनी आलोचनाओं-प्रत्यालोचनाओं और विरोधों से बिना विचलित हुए वे सदैब अपने बनाये मार्ग पर, अपने निर्दिष्ट लक्ष्य की ओर चलते रहे और अपने असूलों, सिद्धान्तों पर दृढ़ता से डटे रहे।

कट्टरवादी सोच वाले संगठनों के खिलाफ राही जिस निर्भीकता से लगातार कलम चलाते रहे यह बहुत बड़े साहस की बात है। यह उन्हीं जैसे दृढ़, निश्चयी, निर्भीक और ईमानदार चरित्र के वश की बात थी। सचमुच वे दो-टूक कहने वाले निर्भीक राही थे। अपनी राह उन्होंने स्वयं बनाई थी। ऊंचे-खाले, गिरते-पड़ते, चढ़ते-उतरते उनके अनुभवों की आंच में तपकर उनका मार्ग प्रशस्त हुआ था इसीलिए उसके कण-कण की, चप्पे-चप्पे की उन्हें जानकारी थी और वे उससे रंचमात्र भी डिगे नहीं। टस-से-मस नहीं हुए।

---

1. *टोपी शुक्ला - डॉ. राही मासूम रजा, पृष्ठ-101।*
2. *टोपी शुक्ला - डॉ. राही मासूम रजा, पृष्ठ-131।*
3. *वही पृष्ठ 97*

लेकिन राही की सोच के ठीक विपरीत धर्म ने लोगों को आपस में लड़ाने का काम किया। उनके मर्म पर चोट की। उनके दिलों को तोड़ा। परिणाम यह हुआ कि जगह-जगह दंगे हुए। लोग एक-दूसरे के खून के प्यासे हो गए। घात-प्रतिघात होने लगे। दंगों में मारे गए लोग अन्यों के लिए भले ही हिन्दू रहे हों या मुसलमान पर राष्ट्रभक्त राही के लिए दंगे में मारा गया हर व्यक्ति न हिन्दू होता है न मुसलमान। वह सिर्फ और सिर्फ इन्सान होता है। यह दुःख की बात है कि ऐसी प्रखर सोच वाले राही भी अपने उपन्यासों में एकाध जगह भटक गए हैं। इसी तरह भाषा के सन्दर्भ में भी इनका अपना मत है कि हिन्दी में मैं पढ़-लिख तो सकता हूं पर ख्वाब नहीं देख सकता। ख्वाब देखने के लिए जरूरी है अपनी संस्कृति और अपने संस्कार में जीना। अन्यथा दंगों में मारे गए अथवा शरीर से गिरने वाले खून के एक-एक कतरे को वे किसी जाति-धर्म या मजहब से जोड़कर नहीं देखते। उनकी नज़र में --

'हिन्दू चला गया न मुसलमां चला गया,
ईसा की जुस्तजू में एक इन्सां चला गया।"[1]

पाकिस्तान-निर्माण के बाद गामा पहलवान द्वारा भारत छोड़कर पाकिस्तान चला जाना सीधे-सादे भोलू पहलवान को बहुत अखरता है। वह अपनी पीड़ा जब आशाराम पत्रकार से व्यक्त करता है तो पत्रकार के बहाने राही की पीड़ा मुखरित होती है कि ''हिन्दुस्तान में हिन्दू-मुसलमान कम हो जायें और पहलवान ज़्यादा हो जायें तो कैसा मज़ा आ जाये।''[2] ढाल रूप में हिन्दू या मुसलमान जैसे शब्दों के प्रयोग से उन्हें सख्त चिढ़ थी। उनकी स्पष्ट सोच थी कि इन्हीं शब्दों ने देश को, समाज को, परिवार को, लोगों को, यहां तक कि इंसान से इंसान को और भगवान को भी बांटने का काम किया है। ऐसे बांटने वाले शब्द अगर मर जाते तो कितना अच्छा होता और तब शायद इस देश से शक्तिशाली राष्ट्र विश्व में कोई और देश नहीं होता।

राष्ट्रीय एकता के लिए हिन्दी-उर्दू को वे सबसे अधिक निकट की भाषा मानते थे। भाषायी राजनीति के कारण प्रवृत्तिगत साम्य होने के बावजूद ये भाषायें लगातार एक-दूसरे से दूर होती गयी। इस दूरी को पाटने के लिए राही ने अपना सब कुछ दाव पर लगा दिया और तब कहीं जाकर दक्खिनी, रेख़्ता, उर्दू और हिन्दी को (हिन्दवी के इन चारों रूपों को) मिला कर एक नया रूप-बंध गढ़ा और अपनी इस सृजित भाषा को अपने उपन्यासों की कथा कहने का आधार बनाया। शायद यही कारण है कि राही को यशस्वी कथाकार व समीक्षक डा. विवेकी राय ने नवीन भाषा का आविष्कारक कहा है। इसके लिए उन्होंने उर्दू को देवनागरी लिपि में लिखने पर बल दिया। उनकी मान्यता थी कि लिपियाँ भाषा और साहित्य न होकर विचारों को प्रकट करने का माध्यम भर होती हैं। उन्होंने सतर्क विवेचना करते हुए यह सिद्ध

---

1. *असंतोष के दिन-डॉ. राही मासूम रजा, पृष्ठ-34।*
2. *कटरा बी. आर्जू-डॉ. राही मासूम रजा, पृष्ठ-40।*

भी किया कि पंजाबी, गुरमुखी फारसी में, मराठी, नेपाली, संस्कृत और हिन्दी देवनागरी लिपि में यहां तक कि सिन्धी भी दो लिपियों में लिखी जाती है। अगर ये सब कई-कई लिपियों में लिखी जा सकती हैं तो फिर उर्दू क्यों नहीं ? ऐसा उन्होंने न केवल कहा अपितु आचरण द्वारा व्यवहार में लाकर दिखा भी दिया। अपने विचारों पर स्वयं पहल करते हुए उन्होंने हिन्दी साहित्य की अमूल्य धरोहर (आश्चर्यजनक बात है कि पूरे उपन्यास में कुल मात्र ढाई दर्जन के आस-पास हिन्दी के शब्द होने के बावजूद यह ग्रन्थ हिन्दी के गौरव-ग्रन्थ के रूप में अपनी भाषायी क्षमता, रचनात्मक उपलब्धियों और सोद्देश्यता को लेकर निर्विवाद रूप से प्रतिष्ठित है।) 'आधा गांव' की देवनागरी लिपि में प्रस्तुत किया। ध्यान देने योग्य बात है कि मैंने 'प्रस्तुत किया' शब्द लिखा है 'लिखा' या 'रचा' नहीं। जिसके पीछे प्रमुख बजह यह है कि उनके द्वारा यह उपन्यास मूलत: फारसी में लिखा (रचा) गया था जिसे आगे चलकर उनके मित्र प्रो. कुंवरपाल सिंह ने देवनागरी में लिप्यांतरित किया और राही ने सम्मान स्वरूप यह कृति उन्हीं को समर्पित की। जबकि बिडम्बना यह है कि उनकी प्रसिद्धि का सर्वाधिक आधार बना यह उपन्यास उर्दू में अब तक अप्रकाशित है। भविष्य में हो भी पायेगा या नहीं ? ईश्वर जाने।

ऐसा क्यों करना पड़ा यानि कि 'आधा गांव' को देवनागरी में लिप्यांतरित कराने की आवश्यकता क्यों पड़ी इसके पीछे के कारण पर प्रकाश डालते हुए डा. राही लिखते हैं, "देवनागरी-हिन्दी में भारतीय मुसलमानों के बारे में कुछ नहीं लिखा गया है। हिन्दी क्षेत्र की नयी पीढ़ी केवल देवनागरी जानती है। इसलिए मैंने 'आधा गांव' के दरवाज़े खोल दिए हैं कि पढ़ने वालों को मुसलमान-जीवन की एक झलक मिल जाए और हिन्दू पाठक यह देख सकें कि यह मुसलमान तो अपने दु:ख-दर्द, हंसी-खुशी समेत बिल्कुल उन्हीं जैसे हैं।"[1] सामान्यता इस उद्धरण को पढ़ने पर ऐसा लगेगा कि सिर्फ मुस्लिम-जीवन की झांकी देने के लिए, हिन्दुओं को मुसलमानों की संस्कृति, रहन-सहन, खान-पान आदि की जानकारी देने के लिए राही ने देवनागरी लिपि को अपनाया है अर्थात् वह उनकी आवश्यकता नहीं, ढाल है। पर वास्तविकता ऐसा नहीं है। आगे के विवेचनों से मेरी यह बात स्पष्ट हो जायेगी।

राही की दृष्टि में एकता के लिए यह परिवर्तन नितांत आवश्यक है। दु:ख की बात है कि राष्ट्रीय एकता के लिए सजग, सचेष्ट राही अपनी बातों को, अपनी धारणाओं को किसी भी वर्ग को ठीक से नहीं समझा पाये और उनका यह स्वप्न दिवा-स्वप्न बन कर रह गया। वे लाख समझाते रह गये कि "उर्दू और हिन्दी एक ही भाषा हिन्दवी के दो नाम हैं परन्तु आप खुद देख लीजिए कि नाम बदल जाने से कैसे-कैसे घपले हो रहे हैं। नाम कृष्ण हो तो उसे अवतार कहते हैं और मुहम्मद हो तो पैगम्बर। नामों के चक्कर में पड़कर लोग यह भूल गये कि दोनों ही दूध देने वाले जानवर चराया करते थे। इसीलिए तो कहता हूं कि टोपी के बिना इफ्फन और इफ्फन के बिना टोपी न केवल अधूरे हैं बल्कि बेमानी है।"[2]

---

1. *"आधा गांव" - डा० राही मासूम रजा, पृष्ठ-21।*
2. *टोपी शुक्ला - डा० राही मासूम रजा, पृष्ठ-32।*

राही की दृष्टि में कोई भी राष्ट्र तब तक समृद्ध नहीं हो सकता जब तक उस देश के निवासियों में एकता की भावना न हो। भाईचारा न हो। एक-दूसरे के सुख-दु:ख में सहभागी होने का स्वभाव न हो। खान-पान, रहन-सहन, बोली-बाणी, वेश-भूषा, धर्म-संस्कृति, आचार-विचार आदि के वैविध्य के बावजूद भाषा और संस्कृति की दृष्टि से एक-दूसरे को नहीं समझेंगे तब तक देश के उन्नत होने की कल्पना ही नहीं कर सकते। क्योंकि भाषा ही वह सेतु है जो व्यक्ति को व्यक्ति से जोड़ने का काम करता है। देश के नागरिकों के मन में देश के प्रति आदरभाव हो, 'जिस देश-जाति में जन्म लिया बलिदान उसी पर हो जावें' की भावना अन्तर्निहित हो तभी देश तरक्की कर सकता है। विविधता में एकता ही हमारी पहचान रही है लेकिन जब यही पहचान समाप्त होने लगती है तो देश की अस्मिता, अखण्डता खतरे में पड़ जाती है। मौका पाते ही गिद्ध-दृष्टि गड़ाये दुश्मन आक्रमण कर देते हैं। लोगों का सुख-चैन छिन जाता है। ऐसा न हो इसके लिए आवश्यक है कि लोगों में ऐक्य भाव बना रहे और उसके लिए ज़रूरी है - भाषायी एकता और भाषायी एकता के लिए आवश्यक है हर भाषा अपनी लिपि के साथ-साथ दो-एक अन्य लिपियों में भी लिखी जाये। इसके लिए विभागों को, यूनिवर्सिटियों को, विद्यार्थियों को, अध्यापकों को पहल करनी होगी।

वे लिखते हैं, "हिन्दी साहित्य और विभाग मीर, गालिब, नजीर, अनीस, इकबाल, जोश और फैज को जायसी, सूर और तुलसी ही की तरह क्यों नहीं अपनाते ? गालिब ने भी जायसी ही की लिपि में लिखा है। मैं जरूरी समझता हूं कि उर्दू लिपि में लिखा हुआ साहित्य देवनागरी लिपि में उतार लिया जाये। क्योंकि केवल इसी शक्ल में हिन्दी का एक राष्ट्रीय कैरेक्टर बन सकता है।"[1] इससे स्पष्ट धारणा बनती है कि वे अपने संपूर्ण जीवन-काल में उर्दू के लिए देवनागरी लिपि अपनाए जाने के प्रबल हिमायती रहे। निकट भविष्य में उन्हें उर्दू के मर जाने का भी खतरा लग रहा था। उन्हें लग रहा था कि उर्दू घराने धीरे-धीरे देवनागरी घराने होते जा रहे हैं। इसलिए भी (अपने वर्ग के साहित्य और इतिहास को सुरक्षित रखने के लिए) उन्हें देवनागरी लिपि अपनाना आवश्यक लग रहा था।

जनता के सामने आधा-अधूरा परोसने वाले इतिहासकारों से भी उन्हें कोफ्त (चिढ़) थी। उनकी शिकायत थी कि इतिहासकार को पूर्वाग्रह से ग्रसित हुए बिना निष्पक्ष और तटस्थ भाव से ऐतिहासिक घटनाओं का चित्रण करना चाहिए जबकि अधिकांश इतिहासकार ऐसा करने से चूक गए हैं। संकीर्ण दृष्टि वाले इतिहासकारों से वे सवाल करते हैं कि "आक साहब जो ताजमहल और कुतुबमीनार को हिन्दू बताते नहीं थकते, उन्हें महमूद गजनबी के सिक्कों पे नदी और लक्ष्मी की छाप क्यों नहीं दिखाई दी।"[2] हकीकत में देखा जाये तो राही साहब की चिन्ता बिल्कुल जायज़ है। इस तरह की दृष्टि के पीछे झगड़ा लगाने का स्वभाव, और अवसरवादिता नहीं तो और क्या है?" लोकसंगीत और स्वर के मामले में भी मजहब घसीट

---

1. *खुदा हाफिज कहने का मोड़ - सं. प्रो. कुंवरपाल सिंह, पृष्ठ- 102*
2. *क्षितिज- अंक -1996-97*

लाते हैं। इन्हें इतना भी नहीं मालूम कि आवाज़, स्वर और संगीत का कोई मजहब नहीं होता।''[1] इसके लिए ''हमें धर्म की ऐनक उतारनी पड़ेगी। इस ऐनक का नम्बर गलत हो गया है और अपना देश हमें धुंधला-धुंधला दिखाई दे रहा है। हम हर चीज को शक की निगाह से देखने लगे हैं।''[2] हमें खुशी है कि सबको देश धुंधला-धुंधला दिखने के बावजूद राही को वह कभी धुंधला नहीं दिखाई देता। उनकी दृष्टि बिल्कुल साफ है। उनके नेत्रों की रोशनी कभी मद्धिम नहीं होने पाई। तभी से एक वीर योद्धा की तरह अविचल भाव से विचारों की समर-भूमि वे अपने प्रतिद्वन्द्वियों को ताल ठोंककर ललकारते रहे और बीच-बीच में उन्हें सही मार्ग और दिशा भी सुझाते रहे। तभी वह यह लिखने का साहस जुटा पाये कि बालक टोपी का अपने मित्र इफ्फन के घर आना-जाना, खाना-पीना, उठना-बैठना उसके घर वालों को रत्ती-भर भी अच्छा नहीं लगता। अपने ही घर में वह उपेक्षित और बेगाना होकर रहता है। उसे नीची दृष्टि से देखा जाता है। उसकी माताजी उसकी थाली अलग रखतीं हैं। कहती हैं कि वह मलेच्छ हो गया है। ''परंतु मां हैं। कभी-कभी प्यार कर ही लेती हैं। तो प्यार करने के बाद सीधी गंगा नहाने जातीं हैं।''[3] एक दिन खाने की मेज पर वह अनायास ही, भूलवश 'मां' को 'अम्मी' शब्द से संबोधित कर देता है। (वैसे इस संदर्भ में राही साहब चाहे जो सफाई दें पर जीवन-भर से मां शब्द का संबोधन करना भूलकर, अनायास अम्मी कह ही नहीं सकता। यह भूल अनायास न होकर उसके द्वारा सायास की गयी गल्ती है। या तो यह उसका इफ्फन के साथ उठने-बैठने, सोहबत का प्रभाव हो या फिर मां को चिढ़ाने की गरज से जान-बूझ कर की गयी धृष्टता।) फिर क्या? घर में भूचाल आ जाता है। उसके मात्र इतना भर कह देने से - ''अम्मी जरा बैंगन का भुरता''--परम्पराओं की दीवार डोलने लगती है। ''अम्मी'' ? यह शब्द इस घर में कैसे आ गया ? अम्मी शब्द धर्म-संकट में पड़ गया।[4]

डॉ० राही की पीड़ा को हम उनके उपन्यासों के कुछ पात्रों के माध्यम से देख सकते हैं। मसलन 'आधा गांव' में जिन्ना के अगर हिन्दुस्तान के खिलाफ होने पर गुस्सा आता है[5] तो इसी प्रकार 'कटरा बी. आर्जू' का भोलू पहलवान, गामा पहलवान को मुस्लिम मानने के लिए कभी तैयार नहीं होता। वह कहता है, ''जब ऊ ना कहिन कि हम हिन्दू लौन्डे को अखाड़े की मिट्टी ना लगायेंगे तो हम कैसे कहें कि ऊ मुसलमान रहें।'[6] राही के पूरे-के-पूरे उपन्यास भारत-पाक विभाजन के दंश को झेलते हिन्दू-मुस्लिम एकता, भाषायी यकजहती, लिपिगत साम्य और कुल मिलाकर राष्ट्रीय ऐक्य के प्रयास की कहानी कहते हैं। 'टोपी शुक्ला' में उनका यह कथन ''टोपी के बिना इफ्फन और इफ्फन के बिना टोपी

---

1. *खुदा हाफिज कहने का मोड़ - सं. प्रो. कुंवरपाल सिंह, पृष्ठ-21*
2. *वही, पृष्ठ-32*
3. *टोपी शुक्ला, पृष्ठ 11 (पेपर बैक्स संस्करण)*
4. *'टोपी शुक्ला'-डॉ. राही मासूम रजा, पृष्ठ-30*
5. *वही, पृष्ठ-182*
6. *'कटरा बी. आर्जू'-डॉ. राही मासूम रजा, पृष्ठ-40*

न केवल अधूरे हैं बल्कि बेमानी हैं।[1] सकीना के बक्से पर तहियाकर रखी गयी राखियां, इफ्फन की भगवान शंकर के प्रति अनुरक्ति, टोपी का यह कहना कि जिस देश की यूनिवर्सिटी में गालिब सुन्नी थे या शीआ, और रसखान हिन्दू थे या मुसलमान उस देश में पढ़ाने का काम मैं नहीं करूंगा। अगर राष्ट्रीय ऐक्य का प्रयास नहीं है तो क्या है ? 'ओस की बूंद' के एक प्रमुख पात्र वजीर हसन का आवेश में आकर यह कहना कि ''हम का दीनदयाल से कम हिन्दुस्तानी हैं ? दसवीं सदी में हमहूं हिन्दू रहे''[2] और फिर राही का यह बयान कि 'वजीर हसन की आत्मा उम्र में गाजीपुर से बड़ी है।'[3] वास्तव में सच्ची हिन्दुस्तानियता का ही प्रमाण है। यही नहीं 'दिल एक सादा कागज' में रफ्फन और इरफान की दोस्ती, 'असंतोष के दिन' में सय्यदा मुसवी जो एक तरफ हिन्दुओं को गारत हो जाने की बद्दुआ देती है तो दूसरी ओर राम मोहन के बीबी-बच्चों के लिए सलामती की दुआ भी मांगती है[4] मौलाना हसरत का प्रतिवर्ष जन्माष्टमी के शुभ अवसर पर बृन्दावन जाना,[5] कान्ता मेहरोत्रा द्वारा अपने बच्चों का विवाह-निकाह हिन्दू-मुस्लिम रीती से करने का फैसला[6] बहुत कुछ इसी तरह के साक्ष्य पेश करते हैं।

कहना असंगत नहीं होगा कि लाख विरोध और दुश्प्रचार के बावजूद डा. राही आज एक सच्चे राष्ट्र-भक्त और सीधे-सच्चे इंसान के रूप में उस जगह स्थापित हो चुके हैं, जहां से डिगा पाना किसी के बूते की बात नहीं है। उनकी कृतियों से गुज़रते समय आइने की तरह यह बिल्कुल साफ हो जाता है कि वे जब तक जीये देश के लिए जीये, समाज के लिए जीये। देश और समाज को जोड़ने, उसकी अस्मिता को बचाये रखने की बात किए और न केवल बात किए अपितु आचरण के द्वारा ऐसा करके दिखा भी दिए। कट्टरता के खिलाफ संघर्ष करने में ही उनका सम्पूर्ण जीवन व्यतीत हुआ। पर अफसोस है कि देश और देशवासियों ने उनकी कुर्बानी को ठीक से नहीं समझा और जितना उनका दाय बनता था वह उनको न दे सके। उनकी निष्ठा पर बराबर उंगली उठती रही। उनके चरित्र के उजले दामन पर आलोचना रूपी कीचड़ के छिटके फेंके जाते रहे। किन्तु इसी के साथ यह भी सच्चाई है कि इतिहास किसी को माफ नहीं करता। उनको खारिज करने वाले लोग आज स्वयं ही खारिज हो चुके हैं। समय की कहानी कहने वाले कथाकार ने यह सिद्ध कर दिया है कि 'मैं समय हूं।' कोई रहे या न रहे पर मैं बराबर रहूंगा। और समय ने उन्हें उस मुकाम पर आज निर्विवाद रूप से प्रतिष्ठित कर दिया है जिसके वे सही मायनों में हकदार थे। आखिर यही तो रचनाकार के जीवन की सार्थकता और सोद्देश्यता है।

---

1. *'टोपी शुक्ला'-डॉ. राही मासूम रजा, पृष्ठ-32*
2. *'ओस की बूंद'-डॉ. राही मासूम रजा, पृष्ठ-31*
3. *वही, पृष्ठ-21*
4. *'असंतोष के दिन'-डॉ. राही मासूम रजा, पृष्ठ-50*
5. *वही, पृष्ठ-103*
6. *कटरा बी. आर्ज़ू-डॉ. राही मासूम रजा, भूमिका*

अपनी नज़र में वे आजीवन सार्थक जीवन जीए। अब 'लगता है बेकार गये हम'-सं. प्रो. कुंवरपाल सिंह, में कुछ छिद्रान्वेषी या पूर्वाग्रह ग्रसित लेखक उनमें निराशावादिता के बीज देख लें, यह अलग बात है। ऊपर से दीखने वाला सत्य आभासित सत्य है वास्तविक सत्य नहीं। वास्तविक सत्य तो इसके ठीक विपरीत है। मजहबी भेद-भाव और धार्मिक उन्माद को वे कभी सहन नहीं कर पाए। यह छोटे बच्चों को पुचकार कर पहले अपने पास बुलाकर प्रेम से, फिर डांट-फटकार से, फिर ताड़ना देकर जैसे उसे गलत रास्ते पर चलने से रोका जाता है, सही मार्ग सुझाया जाता है और उस पर चलने के लिए प्रेरित किया जाता है वैसे ही डॉ. राही का कुछ प्रयास है। अपने सद्प्रयासों और सत्कर्मों के बल पर आज वे काफी ऊपर उठ चुके हैं। इतने ऊपर की उनकी निन्दा या आलोचना करने वाला बड़े से बड़ा लेखक, साहित्यकार और आलोचक बौना लगने लगता है।

कुछ पंक्तियां बड़े अफसोस के साथ लिखनी पड़ रही हैं कि अपनी साफगोई और बेबाक टिप्पणी करने की आदत के चलते डॉ. राही अधिकांश की आंख के किरकिरी बने रहे। हां इस दिशा में उनके मित्र प्रो. कुंवरपाल सिंह के अलावा चन्द्रदेव राय, जय प्रकाश 'धूमकेतु' और इनके बाद स्वामी सहजानन्द स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजीपुर ने उनके व्यक्तित्व व कृतित्व पर आधारित विशेषांक निकालकर डा. राही के अविस्मरणीय योगदान के कर्ज को भी कुछ हद तक उतारा है। आज की यह एक बड़ी सच्चाई है कि कोई भी रचनाकार जहां पहुंचकर बड़ा बनता है वहां डा. राही पहुंच चुके हैं। पाठकों के बीच इस धक्कम-धुक्की और भीड़-भाड़ के युग में भी उनके लिए बहुत बड़ी सुरक्षित और निश्चित जगह बन चुकी है। जहां से वे हमेशा अपने पाठकों को संदेश देते रहेंगे। पर इसी के साथ यह भी चिंता है कि आज़ादी के बाद असंतोष का जो नया मौसम आया वह अभी तक खत्म नहीं हुआ और निकट भविष्य में खत्म होता दिखाई भी नहीं दे रहा है।[1]

इसे बल्कि यूं कहें जो ज़्यादा बेहतर रहेगा कि डॉ. राही की यह समस्या न केवल पूर्ववत् बल्कि उससे कुछ और अधिक विकृत रूप में ही हमारे सामने खड़ी है। यदि हम उस चिन्ता को दूर करने की दिशा में थोड़ा भी आगे बढ़ सके तो उनके प्रति यह हमारी सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि उनके उपन्यास कर्म के बीच से आता संदेश यह है कि देश के हर नागरिक का यह दायित्व बनता है कि वह देश के प्रति वफादार रहे। धर्म का पालन पूर्ण मनोयोग से करे पर व्यक्तिनिष्ठ होकर। उसे किसी के ऊपर थोपने का प्रयास न करे। क्योंकि कोई धर्म या व्यक्ति राष्ट्र के ऊपर नहीं हो सकता। अपने कुत्सित विचारों को किसी के ऊपर लादना सरासर अन्याय है। धर्म और मजहब के नाम पर बनने वाली कोई चीज कभी अच्छी हो ही नहीं सकती। वह व्यक्ति व्यक्ति के बीच नफरत की दीवार खड़ी करती है। ऐसी दीवार को खड़ा होने से रोकना होगा। असंतोष को समाप्त कर संतोषवृत्ति

---

1. *'असंतोष के दिन' - डॉ. राही मासूम रजा, पृष्ठ-76।*

को जगाना होगा। राष्ट्र-हित को बाकी सारे हितों से ऊपर रखना होगा। कटुता को समाप्त कर मेल-मिलाप, मैत्री भाव को अपनाना होगा और सभी धर्मों को मानें या न मानें पर राष्ट्र-धर्म और मानव-धर्म को मानना होगा। इसी में राष्ट्र की, हम सबकी और मानव-मात्र की भलाई है। सेकुलरिज्म को नारा नहीं, जीने का ढंग बनाना होगा। स्नेही हैं तो हिन्दुत्व जैसे अर्थहीन शब्दों के जाल से निकलकर 'ढाई आखर प्रेम का' की शक्ति को पहचानना होगा। इस प्रेम की मशाल-ज्योति लेकर उठना होगा, घर-घर जाना होगा और जहां अज्ञानता का अंधकार होगा वहां-वहां प्रकाश फैलाना होगा तथा एक सपूत की तरह डॉ. राही के सत्प्रयासों का विस्तार कर भारत की सभी भाषाओं, जातियों, धर्मों को मिलाना होगा। केवल हिन्दू-मुस्लिम नहीं, सभी संप्रदाय के लोगों को एक मंच पर लाना होगा। हिन्दी-उर्दू ही नहीं सभी भाषाओं को एक-दूसरे की शैली के रूप में पढ़ना-अपनाना होगा। देवनागरी और उर्दू ही नहीं अन्यान्य लिपियों को भी जानने-सीखने का प्रयास करना होगा। एक गुण-ग्राही की तरह, हंस की तरह विवेक-शक्ति को जागृत करना होगा और अच्छे को ग्रहण कर बुरे का त्याग करने का स्वभाव पैदा करना होगा। डॉ. राही के उपन्यास इन्हीं विमर्शों के इर्द-गिर्द घूमते हैं और अपने राष्ट्रीय दृष्टिकोण सम्बन्धी अर्थवत्ता को प्राप्त करते हैं।

अंत में गंगा के उस यशस्वी बेटे को, जिसकी अंतिम साध थी कि वह गाजीपुर में गंगा की गोदी में समाहित हो, आश्वस्त करना चाहेंगे कि देखो गंगा ने तुम्हारी पुकार सुन ली और तुम्हारे यश: कामी व्यक्तित्व व कृतित्व को अपनी क्रोड़ में बसे महाविद्यालय की पत्रिका को अविरल, अविच्छिन्न धारा के रूप में देश के कोने-कोने में पहुंचा दी। पत्रिका के पृष्ठों से झांककर देखो न, देर से ही सही गाजीपुर अपने दुलरुए का स्वागत करने को बाहें फैलाए आकुल है। गंगा (अपने बेटे को इस रूप में या) कल-कल निनाद कर रही हैं और तुम्हारे गजिपुरिहा भाई तुम्हारी जयगान गा रहे हैं।

ooo

(प्रवक्ता- हिन्दी विभाग)
अवधूत भगवान राम स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अनपरा,
सोनभद्र (उ. प्र.), पिन- 231225; मो. नं. 9415970693

संस्मरण तथा रेखाचित्र साहित्य में 'महादेवी वर्मा तथा उनका भाषा-शिल्प'

❑ डा. कामिनी मट्टू

लेखक की सौन्दर्यमयी अनुभूति की कुशल अभिव्यक्ति ही कला है। शब्द और अर्थ के सामंजस्य का नाम ही साहित्य है। अत: किसी कृत्ति का मूल्यांकन करते समय उसके भाव-सौन्दर्य का अवलोकन करने के साथ-साथ भाषागत संजीवता पर विचार करना भी आवश्यक है।

भावों की प्रेषणीयता और स्थायित्व के अतिरिक्त अस्पष्ट संवेदनाओं को निश्चित आकार प्रदान करने के कारण भाषा का महत्त्व और भी अधिक हो जाता है। वस्तुत: भावाभिव्यक्ति का एकमात्र उपकरण भाषा ही है।

महादेवी वर्मा--उनकी भाषा शैली :-

शब्द चयन : महादेवी जी के संस्मरणात्मक गद्य की भाषा प्रधानतया संस्कृत-निष्ठ है। अपने विवेचनात्मक गद्य में उन्होंने तत्सम-बहुल भाषा का प्रयोग किया है। महादेवी जी तो संस्कृत की प्रकाण्ड पण्डिता रहीं हैं, वस्तुत: उनकी भाषा में संस्कृत शब्दावली का प्राचुर्य होना स्वाभाविक है। संस्कृत के सरल एवं क्लिष्ट तत्समों से युक्त उनकी वाक्यावली प्राय: लम्बी है। संस्कृत निष्ठ भाषा का एक उदाहरण द्रष्टव्य है --''मधु-मक्षिका जैसे कमल से लेकर भटकटैया तक और रसाल से लेकर आक तक, सब मधुर तिक्त एकत्र करके उसे अपनी शक्ति से मधु बनाकर लौटातीं हैं, बहुत कुछ ऐसा ही आदान-सम्प्रदान सुभद्रा जी का था। सभी कोमल-कठिन, सह्य-असह्य, अनुभवों का परिपाक, दूसरों के लिए एक ही होता था। इसका तात्पर्य यह नहीं कि उनमें विवेचन की तीक्ष्ण दृष्टि का अभाव था।''

वस्तुत: 'तत्सम-बहुलता एवं दीर्घ वाक्यान्वित गुरु-गम्भीर शब्दावली उनके भावों के सर्वथानुकूल ठहरती है। तत्सम निष्ठ यह भाषा महादेवी की अभिव्यंजना शैली की प्रौढ़ता की परिचायक है। महादेवी की संस्कृत-निष्ठ तत्सम-पदावली को देखते हुए 'श्री लक्ष्मीकान्त वर्मा' ने उन पर आरोप लगाया है कि महादेवी ने क्लिष्ट-साहित्यिक गद्य का निर्माण किया है। परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। परिष्कृत रुचि के पाठकों को इसमें आनन्दानुभूति ही होती है--''मंजरियों के बीच उसकी नीलाम झलक संध्या की छाया से सुनहरे सरोवर में नीले कमलों

का भ्रम उत्पन्न करती थी। हवा से तरंगायित अशोक के रक्तिनाभ पत्तों में तो वह मूंगे के फलक पर मरकत से बना चित्र जान पड़ता था।''

महादेवी जी ने तत्सम पदावली के साथ-साथ यत्र-तत्र तद्‌भव शब्दों का भी प्रयोग किया है। विशेषत: ग्रामीण पात्रों की उक्तियों में तद्‌भव शब्दों को विशेष रूप से स्थान प्राप्त हुआ है। उदाहरणार्थ 'मन्नू की माई' सम्बन्धी संस्मरण में 'दुबरी की बहू द्वारा तौहफा, मेहरारुन, नाहिन, हियां-उहां आदि शब्दों की बहुलता भी मिलती है। ग्राम्य वातावरण से सम्बद्ध अनेक संस्मरणों में महादेवी की भाषा में देशज शब्दों को भी स्थान प्राप्त हुआ है। विशेष रूप से 'स्मृति की रेखाएं' के अनेक संस्मरण देशज शब्दों के प्रयोग से भाषा में संजीवता एवं स्वाभाविकता ला देते हैं। घुघरी, बामनी, गठियाना, धकियाना आदि देशज शब्दों का समुचित प्रयोग है, कई स्थलों पर तो देशज शब्द युग्मों का प्रयोग अत्यन्त सुन्दर प्रतीत होता है - यथा 'लेखा-जोखा, लिपे-पुते, टोने-टोटके, आदि। इससे भाषा सौष्ठव में पर्याप्त संवृद्धि हुई है। महादेवी ने अपने संस्मरणों में विदेशी शब्दों का भी प्रयोग किया है, परन्तु उनकी संख्या अधिक नहीं है। विदेशी शब्दों में अधिकांशत: अंग्रेजी, अरबी, फारसी के शब्द हैं। यथा - सीज़न, डिपार्टमेंट, अपील, बेदखली, नकासकोना, मियां आदि।

इस प्रकार शब्द-चयन की दृष्टि से महादेवी जी की भाषा में संस्कृत-तत्सम शब्दों का बाहुल्य है, देशज एवं तद्‌भव शब्दों का भी प्रयोग है, विदेशी शब्दों का भी सजीव प्रयोग है, वस्तुत: महादेवी जी को अपनी बात स्पष्ट करने के लिए शब्द चाहिए, जहां जो शब्द सशक्त एवं जोरदार जान पड़ा, उन्होंने वहां उसका प्रयोग कर लिया।

वाक्य योजना :- महादेवी के शब्द चयन की तरह उनका वाक्य-विन्यास भी बड़ा सुलझा हुआ है। उनके वाक्य बड़े आकर्षक एवं सुबोध होते हैं। शब्द-चयन में जिस प्रकार तत्सम बहुल शब्दावली का प्राधान्य है, उसी प्रकार संक्षिप्त-वाक्य रचना की अपेक्षा, दीर्घ-वाक्य योजना की उनमें विशेष प्रवृत्ति है, पर यह प्रवृत्ति उनकी रचनाओं में दूषण न होकर, भूषण सिद्ध हुई है।

गुरु-गम्भीर भावों की अभिव्यक्ति के लिए सरल और लघु वाक्यान्वित भाषा प्राय: असमर्थ सिद्ध होती है, परन्तु उनके वाक्यों में प्रवाह और स्फूर्ति के कारण कविता का सा आनन्द आने लगता है।

वाक्य रचना की दृष्टि से महादेवी में मिश्र और संयुक्त वाक्यों की प्रवाहमयी शैली की भरमार रहती है। एक ही भाव भिन्न-भिन्न परिधान ओढ़कर शैली को गति एवं प्रांजलता प्रदान करता है। उसे प्रभावोत्पादक बनाने की कला में महादेवी विशेष निपुण है। उनके वाक्यों के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं:-

मिश्र वाक्य :-''परन्तु भिखारी के सम्बन्ध में मेरे संस्कार कुछ ऐसी तर्कहीनता तक पहुंच चुके हैं, जहां से अन्ध-विश्वास की सीमा रेखा दूर नहीं रह जाती।''

संयुक्त वाक्य :- "बिंदा के अपराध तो मेरे लिए अज्ञात थे, पर पंडिताइन चाची के न्यायालय में मिलने वाले दण्ड के सभी रूपों से मैं परिचित हो चुकी थी" इतना ही नहीं महादेवी जी के गद्य में वाक्य कहीं-कहीं सीमातीत रूप से लम्बे हो जाते हैं, परन्तु भाव का तारतम्य नहीं टूटता। एक उदाहरण देखिये "धुल-धुल कर धूमिल हो जाने वाले पुराने काले लहंगे को एक विचित्र प्रकार से खोंसे, फटी मटमैली-ओढ़नी को फेंट देकर कमर में लपेटे और दाहिने हाथ में एक बड़ा-सा हंसिया सम्भाले लछमा नीचे पड़ी घास-पत्तियों के ढेर पर कूद कर खिलखिला उठी।" इसी प्रकार महादेवी जी की अधिकांश वाक्य योजना प्राय: दीर्घ है, परन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं कि उन्होंने छोटे-छोटे वाक्यों का कहीं प्रयोग ही नहीं किया। संक्षिप्त वाक्य-विन्यास भी उनमें हैं, लेकिन अधिक नहीं।

मुहावरों का प्रयोग :-प्रवाहमयी प्रांजल भाषा में मुहावरों का प्रयोग प्रचुर रहता है। शब्द की लक्ष्णा-शक्ति को मुहावरों में देखा जा सकता है। महादेवी जी की प्रांजल एवं प्रौढ़ भाषा में मुहावरों के प्रयोग भी महत्त्वपूर्ण हैं। इनके सुन्दर प्रयोग ने महादेवी की गद्य शैली में अनायास ही आकर्षण उत्पन्न कर दिया है। इनके प्रयोग से उनकी भाषा में व्यंग्य और चुटीलापन भी उभर आया है। प्रयोग में लाये हुए कुछ विशिष्ट मुहावरों के उदाहरण द्रष्टव्य हैं :-

(क) हाथ पीले करना,
(ख) टेढ़ी खीर,
(ग) उदारता का डाइनामाइट,
(घ) हाथ-बंटाना,
(ङ) दांतों तले उंगली दबाना,
(च) दूधो नहाना,
(छ) कुत्ते की मौत मरना।

इस प्रकार मुहावरों के प्रयोग ने भाषा को समर्थ बनाने में पर्याप्त सहयोग दिया है। परम्परागत मुहावरों के साथ-साथ नये मुहावरों की सृष्टि भी की है, यथा - कन्या के दो संस्करण, खोटे सिक्कों की टकसाल आदि इस प्रकार के प्रयोग हैं। इन मुहावरों का व्यंग्य विनोद, लेखिका के व्यक्तित्व की चाशनी में घुलकर एक सशक्त गद्य का रूप धारण कर सका है।

लोकोक्तियों का प्रयोग :-लोकोक्तियों में 'गागर में सागर' भरने की प्रवृत्ति काम करती है। इसमें जीवन के सत्य बड़ी खूबी से प्रकट होते हैं। लोकोक्तियां तो ग्रामीण जीवन का नीति-शास्त्र हैं। हिन्दी साहित्य कोश में लिखा है --"लोकोक्ति मानवी ज्ञान के घनीभूत रत्न हैं, जिनसे बुद्धि और अनुभव की किरणें फूटने वाली ज्योति प्राप्त होती है। अभिव्यंजना में विशेष सौन्दर्य उत्पन्न करने के लिए मुहावरों की तरह ही, महादेवी जी ने संस्मरणों में लोकोक्तियों का सुन्दर प्रयोग किया है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं:-

(क) मान न मान, मैं तेरा मेहमान,
(ख) वो दिन चले अढ़ाई कौस,
(ग) लग जाये तीर नहीं तो तुक्का
(घ) रोज़ कुआं खोदना, रोज़ पानी पीना,

सूक्तियों का प्रयोग :- भावावेश के क्षणों में महादेवी जी के कथन में उक्ति-वैचित्र्य, अथवा सूक्ति कथन यत्र-तत्र और प्राय: सर्वत्र ही मिलते हैं। महादेवी के संस्मरणों में कहीं आदि में, और कहीं अन्त में सूक्तियों का सुन्दर प्रयोग हुआ है। उदाहरण द्रष्टव्य है :-

1. मनुष्य स्वयं एक कविता है 2. जीवन सौन्दर्य की आत्मा है।

चित्रात्मक भाषा :- प्रवीण गद्य-लेखिका और भावुक कवयित्री होने के साथ-साथ एक निपुण चित्रकार भी हैं। यही कारण है कि 'उनकी भाषा में कल्पना, भाव-पूर्णता, सजीवता, मृदुता तथा चमत्कार से पूर्ण, एक-से-एक सुन्दर-चित्र सामने आते हैं। भाषा में शब्दों की ऐसी सुन्दर योजना है कि वे वर्ण्य-विषय का चित्र खींचते चलते हैं। 'पथ के साथी' का एक शब्दचित्र देखिए --"आले पर कपड़े की आधी बत्ती से भरा, पर तेल से खाली, मिट्टी का दीया मानो अपने नाम की सार्थकता के लिए, जल उठने का प्रयास कर रहा था।"

काव्यात्मक भाषा :-महादेवी गद्य लेखिका होने से पूर्व कवयित्री हैं। अत: स्वभावत: उनके गद्य में भी यत्र-तत्र काव्यात्मकता का समावेश हो गया है। 'अतीत के चलचित्र' 'स्मृति की रेखाएं' और 'मेरा परिवार' में लेखिका ने अपने जीवन से सम्बन्ध रखने वाली स्मृतियों को काव्यात्मक अभिव्यक्ति दी है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है --"फागुन के गुलाबी जाड़े की वह सुनहली संध्या, सवेरे के पुलकपंखी वैतालिक, अपने नीड़ों की ओर लौट रहे थे। विरल बादलों के अन्तराल में उन पर चलाये सूर्य के सोने के शब्दवेधी बाण, उनकी उन्माद गति में ही उलझ कर लक्ष्य-भ्रष्ट हो रहे थे।"

अलंकृति :-महादेवी जी के संस्मरणात्मक गद्य में जहां भावोद्रेक एवं कल्पना का प्राधान्य है, वहीं उनकी भाषा काव्यमयी मधुरता से सम्पन्न है, साथ में अलंकारों की रमणीयता देखते ही बनती है। शब्दालंकारों का सहजता पूर्ण प्रयोग है। महादेवी जी के गद्य में 'अनुप्रास' तथा 'वीभत्स' का समावेश, एवं यमक का चमत्कार, तथा 'पुनुरुक्ति' की गति है। अर्थालंकारों में महादेवी वर्मा ने विशेषतय: 'उपमा', 'रूपक' तथा उत्प्रेक्षा का प्रयोग 'चित्रात्मकता' के गुण को निखारने के लिए किया है। उदाहरण देखिए :-

1. श्वेत कमल की पंखुड़ियों के समान लगने वाले पर्वतों के बीच में......
2. हिमालय के शिखर ऐसे थे मानो शरद् पूर्णिमा की रात्रि में.....

महादेवी की भाषा भावानुसारिणी है। महादेवी की भावानुकूल भाषा के विषय में डा० रामचन्द्र महेन्द्र का कथन द्रष्टव्य है --"महादेवी की दृष्टि बड़ी पैनी है, उन्होंने वस्तुओं, प्राकृतिक दृश्यों, व्यक्तियों तथा ग्रामीणों की भावनाओं को कुशलता से परखा है।"

कविता की भांति गद्य में भी लाक्षणिक भाषा का प्रयोग किया है--बिट्टो के चित्र में लाक्षणिक भाषा का प्रयोग द्रष्टव्य है --"जिस समाज में चौंसठ वर्ष का व्यक्ति चौदह वर्ष की पत्नी चाहता है, वहां बत्तीस वर्ष की बिट्टो के पुर्नविवाह की समस्या सुलझा लेनी टेढ़ी खीर थी।"

शैली :-महादेवी जी की हिन्दी के उन लेखकों में गणना की जा सकती है, जिन्होंने हिन्दी गद्य को समर्थ शैली प्रदान की है। महादेवी के संस्मरणात्मक गद्य की प्रमुख शैली वर्णन प्रधान है। उनके यात्रा सम्बन्धी संस्मरण इस शैली के सुन्दर निर्देशन हैं। श्रीनगर में एक पड़ाव का वर्णन अवलोकनीय है--"वह आश्रम जहां हाऊसबोट में जाने तक हमारे ठहरने का प्रबन्ध था, सहज ही किसी जन्तुशाला का स्मरण करा देता था।"

बदरीनाथ के यात्रा सम्बन्धी संस्मरण तथा श्रीनगर की धर्मशालाओं तथा वहां की अद्वितीय शोभा का वर्णन उनकी वर्णनात्मक शैली का परिचायक है।

अपने संस्मरणात्मक गद्य में महादेवी जी ने नारी की दयनीय, अवस्था के अंकन में वर्णन-प्रधान शैली का उपयोग किया है। इस शैली में वर्णनात्मकता के साथ-साथ मार्मिकता, व्यंग्यात्मकता और पुरुष-वर्ग पर करारी चोट है।

भाषा की अभिधा, लक्षणा आदि शक्तियों के आधार पर वर्णनात्मक शैली के दो रूप देखें जा सकते है--

1. सरल वर्णनात्मक शैली,
2. व्यंग्यात्मक लाक्षणिक वर्णन शैली,

सरल वर्णनात्मक शैली :-इस में अभिनयात्मक संस्पर्श लाने के लिए महादेवी पात्रों की आकृति, वेश-भूषा, तथा चेष्टादि का सूक्ष्म चित्रण करतीं हैं।

व्यंग्यात्मक-लाक्षणिक शैली :-महादेवी के संस्मरणों में सरल वर्णनात्मक शैली की अपेक्षा व्यंग्यात्मक लाक्षणिक शैली की प्रचुरता है। कहीं लक्षणा गर्भित व्यंग्य मिलेगा, तो कहीं व्यंग्य गर्भित लक्षणा। महादेवी के व्यंग्यों में तीक्ष्णता तो रहती है परन्तु उनमें कटुता नहीं होती। उनकी व्यंग्य गर्भिता शैली में शिष्टता सदा मिलेगी। 'श्रृंखला की कड़ियां' में महादेवी जी ने इस शैली का यत्र-तत्र प्रयोग किया है।

भावात्मक शैली :-महादेवी जी शब्दों की उत्कृष्ट शिल्पकार हैं, वे परम्परा से प्रचलित शब्द को नया अर्थ प्रदान करने में विशेष पटु हैं। भावात्मक स्थलों पर संस्कृत निष्ठ भाषा का प्रयोग रहने पर भी उनमें जटिलता नहीं है।

विचारात्मक शैली :-यह चिन्तन प्रधान शैली है। इसका प्रयोग महादेवी जी ने अपने विवेचनात्मक गद्य तथा 'क्षणदा' के अधिकतर निबन्धों में सामान्य रूप से किया है। संस्कृत

निष्ठ शब्दावली के साथ छोटे-छोटे वाक्यों का प्रयोग किया है। आलोचना प्रधान शैली होने पर भी उनका गद्य भावुकता से युक्त है। परन्तु तर्क और उक्ति का अवलम्बन उन्होंने अवश्य लिया है। काश्मीर की दरिद्र युवतियों के वर्णन में विवेचनात्मक शैली का एक उदाहरण प्रस्तुत है --''प्रकृति ने इन्हें इतना भव्य रूप दिया था, परन्तु निष्ठुर भाग्य ने दियासिलाई के डिब्बे जैसे मलिन घरों में प्रतिष्ठित कर, और मलिन वस्त्र मात्र देकर, इनके सौन्दर्य का उपहास कर डाला है, और हृदयहीन विदेशियों ने अपने ऐश्वर्य की चकाचौंध से इनके अमूल्य सौन्दर्य को मोल लेकर, मूल्य रहित बना दिया।''

रेखाचित्रात्मक शैली :-इस शैली का प्रयोग महादेवी ने जीवन की किसी परिस्थिति अथवा मनोरम प्राकृतिक दृश्य के चित्रण में किया है। महादेवी स्वयं चित्रकार हैं, इसलिए इस शैली में उन्होंने शब्दों की सहायता से विभिन्न प्रकार के रंग भरने की सफल चेष्टा की है। 'स्मृति की रेखाएं' तथा 'अतीत के चलचित्र' रेखाचित्रात्मक शैली के नमूने हैं। महादेवी जी ने शब्द-योजना द्वारा जो चित्र अंकित किये हैं, वे किसी चित्रकार के चित्र से कम नहीं।

इस प्रकार महादेवी जी के संस्मरण शिल्प की विवेचना के अनन्तर यह सहज ही कहा जा सकता है कि महादेवी जी का संस्मरण साहित्य, कहानी, रेखाचित्र एवं निबन्ध की अनेक विशेषताओं से समन्वित है। उसमें कथा की सी रोचकता है, रेखाचित्रकार की सी भाषा की चित्रोपमता एवं शब्दयोजना है, तथा निबन्धकार की सी भावुकता एवं मस्ती भी है।

संदर्भ सूत्र

1. पथ के साथी - महादेवी वर्मा — पृ०-59
2. महादेवी की साहित्य साधना डॉ. सुरेशचन्द — पृ०-148
3. आलोचना - दिसम्बर - 1966 — पृ०-81
4. मेरा परिवार - महादेवी वर्मा — पृ०-461
5. स्मृति की रेखाएं - महादेवी वर्मा — पृ०-7, 16, 63
6. महादेवी अभिनन्दन ग्रन्थ — पृ०-264
7. अतीत के चलचित्र - महादेवी वर्मा — पृ०-86
8. हिन्दीं साहित्य कोश — पृ०-692-693
9. हमारे लेखक - राजेन्द्र सिंह गौड़ — पृ०-405
10. क्षणदा - महादेवी वर्मा — पृ०-40

०००

जम्मू कश्मीर का राजकीय पशु : हांगुल

❑ डा. परशुराम शुक्ल

भारत के उत्तरी भाग के पर्वतीय जंगलों में हिरण परिवार के चार वन्य जीव पाये जाते हैं। ये हैं --सांभर, कांकड़, कस्तूरीमृग और हांगुल। इनमें से सांभर और कांकड़ अधिक ऊंचाई वाले भागों मे नहीं रह सकते। ये केवल ढाई हजार मीटर तक की ऊंचाई वाले स्थानों पर ही देखने को मिलते हैं। शेष दो हिरण-कस्तूरी मृग और हांगुल अधिक ऊंचाई वाले पर्वतीय क्षेत्रों में रहना पसन्द करते हैं।

हांगुल एक भारतीय हिरण है। इसे कश्मीरी स्टैग तथा कश्मीरी बारहसिंघा भी कहते हैं, किन्तु यह बारहसिंघा से भिन्न है। हांगुल हिमालय पर्वत के 2400 मीटर से लेकर 4000 मीटर तक की ऊंचाई वाले भागों में पाया जाता है। किसी समय यह पूरे कश्मीर, हिमाचल प्रदेश और हिमाचल के पर्वतीय वनों में फैला हुआ था, किन्तु अब केवल कश्मीर के डाचीगाम और हिमाचल प्रदेश के उत्तरी चम्बा में ही सीमित रह गया है।

हांगुल प्राय: अकेले अथवा दो से लेकर अठारह तक के झुण्ड में नदियों के समीपवर्ती घने जंगलों अथवा चीड़ के सघन वनों में रहता है। इसे एक ही जंगल में रहना बिल्कुल पसन्द नहीं। यह एक शर्मीला हिरण है, अत: इसे स्वतंत्रतापूर्वक विचरण करने के लिये बहुत बड़ा क्षेत्र चाहिये। हांगुल भोजन की तलाश में एक जंगल से दूसरे जंगल और फिर इसी तरह अन्य जंगलों में घूमता रहता है। यह गर्मियों के दिनों में हिमाचल पर्वत के ऊंचाई वाले भागों में चला जाता है और सर्दियों में अधिक ठण्ड के कारण पुन: नीचे के घाटी वाले क्षेत्रों में उतर आता है।



जम्मू और कश्मीर का राजकीय: हांगुल (हांगुल)

हांगुल एक विशुद्ध भारतीय हिरण है, किन्तु कुछ जीव वैज्ञानिक इसे योरोप के लाल हिरण (रेड डीअर) की एक उपजाति मानते हैं योरोप का लाल हिरन बड़ी जाति का एक हिरण है। इसकी अनेक उपजातियां हैं, जो पूरे योरोप, एशिया, उत्तरी हिमालय क्षेत्र, उत्तरी अफ्रीका तथा उत्तरी अमरीका तक में फैली हुई हैं। जीव वैज्ञानिकों के अनुसार उत्तरी हिमाचल क्षेत्र में लाल हिरण की तीन उपजातियां पायी जाती हैं। उन्हीं में से एक हांगुल है। हांगुल अपनी सुन्दरता के कारण लाल हिरण की सभी उपजातियों में सर्वाधिक प्रसिद्ध है।



हांगुल (नर और मादा)

हांगुल की शारीरिक संरचना सांभर के समान होती है। यह आकार में सांभर से कुछ छोटा होता है। हांगुल के शरीर की लम्बाई 125 सैन्टीमीटर से लेकर 150 सैन्टीमीटर तक, कंधों तक की ऊंचाई 120 सैन्टीमीटर से 125 सैन्टीमीटर तक एवं वजन 150 किलोग्राम से लेकर 225 किलोग्राम तक होता है। इसका रंग योरोप के हिरणों के समान हल्के भूरे कत्थई रंग से लेकर गहरा कत्थई तक होता है तथा इस पर छोटे-छोटे मुलायम बाल होते हैं। हांगुल की दोनों तरफ की बगलों का भाग पीलापन लिये हुए हल्का भूरा होता है एवं पुट्ठों पर ऊपर की ओर नारंगीपन लिये हुए सफेद रंग का एक धब्बा होता है। इस धब्बे के दोनों ओर गहरे भूरे रंग की पट्टियां होती हैं, जो पीठ से होती हुई पूंछ के पास तक आती हैं। हांगुल के पैरों का रंग शरीर के रंग से कुछ हल्का होता है और ये काफी लम्बे व मजबूत होते हैं। अपने मजबूत पैरों के बल पर यह पर्वतीय क्षेत्रों की सीधी चढ़ाई भी दौड़ता हुआ चढ़ जाता है और थकता नहीं है। नर हांगुल के पिछले भाग पर लम्बे और घने बाल होते हैं तथा गर्दन के नीचे के भाग में छोटे-छोटे कम घने बाल होते है। हांगुल का मुंह लम्बा, कान बड़े तथा पूंछ छोटी होती है। इसके ओंठ, ठोढ़ी, कानों के भीतर का भाग, पेट तथा शरीर के नीचे का भाग आदि सफेदी लिये हुए हल्के भूरे रंग का होता है। हांगुल के शरीर का रंग गर्मियों में हल्का पड़ जाता है तथा सर्दियों में पुनः गहरा हो जाता है, किन्तु वृद्ध नर स्थायी रूप से गहरे रंग के हो जाते हैं। हांगुल की आवाज़ भारत में पाये जाने वाले तथा योरोपियन लाल हिरन की सभी उपजातियों के हिरनों से पूरी तरह भिन्न होती है। इसकी आवाज़ तेन्दुए की दहाड़ से बहुत मिलती-जुलती है।

मादा हांगुल का शरीर नर से छोटा होता है तथा रंग मटमैला पीलापन लिये हुए भूरा सा होता है। कभी-कभी वृद्ध मादाओं के शरीर पर सफेद रंग की चित्तियां उभर आती हैं, जो जीवन-भर बनी रहती हैं। मादा हांगुल की गर्दन पर बाल नहीं होते, किन्तु इसकी त्वचा नर से अधिक सुन्दर और आकर्षक होती है।

नर हांगुल के सर पर सामान्य हिरणों के समान दो मृगश्रृंग (एन्टलर्स) होते हैं, जिनकी लम्बाई 100 सैन्टीमीटर से लेकर 110 सैन्टीमीटर तक होती है। सन् 1995 तक हांगुल के अधिकतम लम्बे मृगश्रृंगों का कीर्तिमान 128.3 सैन्टीमीटर है। इसके प्रत्येक मृगश्रृंग में 5 अथवा 6 शाखाएं होती हैं, जिनके सिरे पतले और नुकीले होते हैं। हांगुल के मृगश्रृंगों की शाखाओं की कुल संख्या 10 से 13 तक हो सकती है, किन्तु कभी-कभी 14-15 शाखाओं वाले मृगश्रृंग भी अपवाद के रूप में देखने को मिल जाते हैं। हांगुल के मृगश्रृंगों की शाखाओं का कीर्तिमान 16 है, किन्तु सोलह शाखाओं वाले मृगश्रृंगों का हांगुल अभी तक केवल एक ही देखा गया है। नर हांगुल के मृगश्रृंग मार्च-अप्रैल तक गिर जाते हैं। इसके बाद यह ऊंचे पर्वतीय वनों की ओर चल देता है। इसके मृगश्रृंग अगस्त में पुनः निकलना आरम्भ होते हैं और अक्तूबर तक पूरे निकल आते हैं।

हांगुल दिवाचर है, अर्थात् दिन के समय चरता है। यह प्रात:काल सूर्योदय होते ही भोजन की तलाश में निकल पड़ता है और सूर्यास्त के बाद अंधेरा होने तक चरता है तथा रात्रि के समय किसी सुरक्षित स्थान पर विश्राम करता है। हांगुल को तेज धूप या गर्मी सहन नहीं होती, अत: गर्मी के दिनों में तेज धूप होने पर यह किसी छायादार वृक्ष के नीचे आराम करता है और धूप की तेजी समाप्त होने पर पुन: चरने के लिये निकल पड़ता है।

हांगुल सदैव झुण्ड में रहने वाला हिरन है। यह हमेशा झुण्ड में ही चरता है, किन्तु इसके झुण्ड में सदस्यों की संख्या मौसम पर निर्भर होती है। हांगुल का प्रमुख भोजन घास-फूस, पत्तियां तथा पर्वतीय वनों में उगने वाली विभिन्न प्रकार की झाड़ियां आदि हैं। यह कभी भी एक जंगल में रह कर नहीं चरता, बल्कि भोजन की तलाश में एक जंगल से दूसरे जंगल और इसी प्रकार तीसरे-चौथे जंगल में घूमता-फिरता है।

हांगुल के झुण्ड में प्राय: दो से लेकर अठारह तक सदस्य रहते हैं, किन्तु भोजन की पर्याप्त मात्रा होने पर झुण्ड में सदस्यों की संख्या अधिक भी हो सकती है। सन् 1980 में कश्मीर के डाचीगाम अभयारण्य में सर्दियों के मौसम में हांगुल का एक ऐसा झुण्ड देखने को मिला था, जिसमें 31 हांगुल थे। हांगुल के झुण्ड में प्राय: एक या दो नर, अनेक मादाएं तथा इनके बच्चे होते हैं। कभी-कभी यह चरते-चरते अपने झुण्ड से अलग हो जाता है और काफी दूर निकल जाता है, किन्तु अन्धेरा होने से पहले अपने साथियों से आकर मिल जाता है। मार्च-अप्रैल के महीनों में तेज गर्मी होने पर भोजन की कमी के कारण हांगुल के झुण्ड टूट जाते हैं। इस समय नर प्राय: अकेला रहता है और मादाओं व बच्चों के भी दो-तीन से अधिक संख्या वाले झुण्ड देखने को नहीं मिलते।

हांगुल की दृष्टि सामान्य होती है, किन्तु घ्राण शक्ति और श्रवण शक्ति बड़ी तेज होती है। इसके चार प्रमुख शत्रु हैं हिमालय का भूरा भालू, हिमालय का काला भालू, हिम तेंदुआ तथा तेंदुआ। इनमें तेंदुआ सबसे अधिक खतरनाक होता है। इसकी गंध पाते ही हांगुल सतर्क हो जाता है और मुंह से एक विचित्र प्रकार की आवाज़ निकाल कर अपने साथियों को भी सावधान कर देता है।

हांगुल का समागम काल सितम्बर के अंतिम सप्ताह से आरम्भ होता है और नवम्बर के पहले सप्ताह तक चलता है। यह वही समय होता है जब नर हांगुल के मृगश्रृंग पूर्ण विकसित रूप में होते हैं। समागम काल में नर और मादा के व्यवहार में काफी परिवर्तन आ जाता है। नर हांगुल अन्य नरों से अलग हो जाता है तथा बघेर (तेंदुए) की दहाड़ जैसी आवाज़ें निकालता है। इसके साथ ही मादाएं भी अपने छोटे-छोटे झुण्ड बना लेतीं हैं, जिनमें बच्चे भी रहते हैं।

नर हांगुल समागम काल में सांभर, कांकड़, कस्तूरी मृग आदि पर्वतीय हिरनों के समान कोई सीमाक्षेत्र नहीं बनाता और न ही मादा हांगुल अपना सीमा क्षेत्र निर्धारित करती है, किन्तु

सांभर के समान नर हांगुल अपना हरम बनाता है, जिसमें 3-4 मादाएं होती हैं। यह प्राय: समागम के पूर्व से ही अर्थात् सितम्बर के अंत या अक्टूबर के आरम्भ से ही मादाओं के साथ रहने लगता है और समागम काल के अन्त तक साथ रहता है। समागम काल में मादाओं की प्राप्ति के लिये नर हांगुल आपस में नहीं लड़ते, क्योंकि अगस्त के अंत तक प्राय: शारीरिक शक्ति के आधार पर एक प्रकार का सामाजिक स्तरण स्थापित हो जाता है, अर्थात् नर हांगुल अपने से अधिक शक्तिशाली नर की अधीनता स्वीकार कर लेते हैं। इसका एक अन्य कारण नर और मादा के अनुपात में मादाओं की संख्या का बहुत अधिक होना भी है। एक शोध के अनुसार सन 1980 में डाचीगाम अभयारण्य में हांगुल नर और मादा की संख्या का अनुपात 5 और 19 था। अर्थात 19 मादाओं के मध्य 5 नर थे।

हांगुल के सम्बन्ध में जीव वैज्ञानिकों का मत है कि जब इनकी संख्या बहुत अधिक थी, तब ये मादाओं की प्राप्ति के लिये आपस में लड़ते थे। इनमें मादा की प्राप्ति के समय मादा के समीपवर्ती नर को दूसरा नर चुनौती देता था। इसके बाद दोनों में लड़ाई होती थी तथा अन्त में विजेता नर को मादा प्राप्त हो जाती थी और हारा हुआ नर दूसरी मादा की खोज में चल देता था। अधिक शक्तिशाली नर हांगुल बड़े हरम बनाता था, जिसमें मादाओं की संख्या 5-6 तक होती थी। इसे स्वामी नर (मास्टर स्टैग) कहते थे। यह सांभर के समान अपने हरम की सभी मादाओं की सुरक्षा करता था तथा उनके साथ समागम करता था।

हांगुल का समागम काल पतझड़ के साथ ही समाप्त हो जाता है और समागम काल के बाद नर अपना हरम तोड़ देता है तथा एकान्त में विचरण करता है या अन्य नर हांगुलों के साथ मिल कर झुण्ड बनाता है। इस समय इसके झुण्ड में केवल नर रहते हैं तथा इनकी संख्या एक पाँच तक हो सकती है। अब ये अच्छे चारगाहों की खोज में ऊंचाई वाले क्षेत्रों की ओर चल पड़ते हैं और अधिक ठण्डक होने पर पुन: नीचे उतर आते हैं। नर हांगुलों के समान मादाएं भी अपना अलग झुण्ड बना लेतीं हैं, जिसमें इनके बच्चे भी रहते हैं। मादा हांगुल के झुण्ड नर के झुण्ड से बड़े होते हैं तथा इनके झुण्ड में मादाओं और बच्चों की संख्या 12 से 16 तक होती है।

मादा हांगुल न तो समागम काल में सीमाक्षेत्र बनाती है और न ही बच्चे को जन्म देने के लिये किसी सीमा क्षेत्र का निर्धारण करती है। इसका गर्भकाल लगभग 6 माह से 7 माह के मध्य होता है, अर्थात् यह अप्रैल-मई के महीनों में एक बच्चे को जन्म देती है, किन्तु जुड़वां बच्चे होना भी अपवाद नहीं है। यह बच्चे देने के लिए सदैव नदियों के किनारे की घनी झाड़ियों वाले जंगलों का चुनाव करती है और प्राय: एकान्त में बच्चे को जन्म देती है, किन्तु कभी-कभी एक ही स्थान पर दो मादाओं को बच्चे देते हुए भी देखा गया है। जन्म के समय हांगुल के बच्चों के शरीर पर धारियां होती हैं, जो बड़े होने पर स्वत: समाप्त हो जाती हैं। सभी भारतीय हिरनों के समान बच्चों के पालन-पोषण का कार्य मादा हांगुल ही करती है तथा बच्चे पूरे समय मां के साथ ही रहते हैं। ये लगभग दो से ढाई वर्ष में वयस्क

हो जाते हैं। हांगुल का जीवन काल 12 से 15 वर्ष तक होता है, किन्तु शिकार के कारण इस आयु तक बहुत ही कम हांगुल पहुंच पाते हैं।

भारत की बढ़ती हुई आबादी, घटते हुए वन तथा शिकार आदि के कारण हांगुल विलुप्ति के कगार पर पहुंच गया है। हांगुल हिरनों का प्रमुख स्थान कश्मीर का डाचीगाम वन्य क्षेत्र है। डाचीगाम वन्यक्षेत्र 141 वर्ग किलोमीटर के क्षेत्र में फैला हुआ है। इसके आसपास शंकरगढ़, ओवेरा, सिन्धुघाटी तथा लिद्वर के वन्य क्षेत्र हैं। भारत सरकार हांगुल हिरनों की घटती हुई संख्या से चिंतित थी, अत: इन्हें बचाने के लिये सरकार ने सन् 1951 में डाचीगाम वन्यक्षेत्र को अभयारण्य घोषित कर दिया और हांगुल के शिकार पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगा दिया, किन्तु इससे हांगुल की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं आया।

भारत की आज़ादी के पूर्व सन 1940 में हांगुल की जो संख्या तीन हजार से अधिक थी वह सन् 1970 तक घट़ कर मात्र 170 रह गयी) हांगुल की घटती हुई संख्या को देखते हुए वन्य प्राणियों के अंतर्राष्ट्रीय संघ (आई.यू.सी.एन.) ने सर्वप्रथम इस ओर ध्यान दिया तथा हांगुल को अत्यन्त दुर्लभ वन्यप्राणी की श्रेणी में सम्मिलित करते हुए इसके संरक्षण की अपील की।

अंतर्राष्ट्रीय संघ की अपील पर विश्व वन्य जीव संगठन (डब्ल्यू.डब्ल्यू.एफ) ने भी इस ओर ध्यान दिया और सन् 1970 में इन दोनों संगठनों ने मिल कर जम्मू और कश्मीर सरकार के सहयोग से डॉ. फ्रेड कुर्त के निर्देशन में हांगुल को बचाने के लिये भारत में 'हांगुल परियोजना' आरम्भ की। इस परियोजना के शीघ्र ही अच्छे परिणाम सामने आये और सन् 1980 में हांगुल की संख्या बढ़ कर 347 हो गयी हांगुल की संख्या अभी भी बढ़ रही है, किन्तु वनों की निरन्तर कटाई एवं वन्यजीवों का शिकार दो ऐसे प्रमुख कारण हैं, जिनसे हांगुल के संरक्षण में आशातीत सफलता नहीं मिल पा रही है।

ooo

100, पंचशील नगर, सिविल लाइन्स,
दतिया (म. प्र.) 475661, फोन : (07522) 36292

सिकंदर का डोगरा वीरों के हाथों पराजित होना

❑ मंगल दास डोगरा

यूनान के साथ एक छोटा-सा देश है मेकडोनिया। ईसा पूर्व 335 में यहां का राजा फिलिप मर गया और राजगद्दी पर उस का पुत्र सिकंदर बैठा। उस समय सिकंदर केवल 20 वर्ष का था। सिकंदर के गुरु का नाम अरस्तु था जो बड़ा ही चतुर, चलाक और विद्वान था। अपने गुरु के साथ मन्त्रना कर के सिकंदर ने विश्व विजय करने का सपना संजोया जिसके लिए उस ने एक बड़ी भारी आत्मघाती सेना त्यार की और अपने आस-पास के राज्यों के साथ युद्ध छेड़ दिया और जल्दी ही अपने राज्य को काफी विशाल बना लिया। जिस समय सिकंदर सारे विश्व को विजय करने का सपना लेकर घर से निकला था तो उस की जवानी ठाठे मार रही थी और जोश से आंखें लाल हो गयी थी लेकिन इतिहास के पन्ने पलटने से यह पता चलता है कि पता नहीं कब आदमी का पैर मौत के दलदल में घुस जाए। इतिहास सिकंदर के बारे में भी कुछ ऐसा ही कह रहा है।

उसके पांव जिस समय वीर डोगरों की धरती पर जिसे उस समय मद्र देश, दारोअभिसार, द्विगर्त एवं त्रिगर्त कहते थे पड़े तो इस धरती पर एक तूफान उठा जिसमें सिकंदर और विश्व विजय करने का उस का सपना चिनाव, रावी और व्यास कि तेज लहरों में बहकर चकनाचूर होकर सब नष्ट-भ्रष्ट हो गया। उसका अभिमान ऐसे चूर-चूर हुआ जिस के बारे में उसने कभी सोचा भी नहीं होगा। ऐसा भी हो सकता था कि उसके पैर सिन्धु नदी को पार करने से पहले ही डगमगा जाते और वह पीछे जाने पर बेबस हो जाता यदि टेक्सला के राजा अम्बी और अभिसार के राजा पौरव राज की आपस में शत्रुता नहीं होती। पं० राम दीन पांडेय की किताब 'प्राचीन भारत की सग्रमिकता' 1957 ई० के अनुसार भारत उस समय 20 राज्यों में बंटा हुआ था और यह सभी राजे आपस में लड़ते रहते थे। कन्धार और अभिसार के शासकों की शत्रुता ने सिकंदर के लिये सिन्धू पार करना सुगम ही नहीं किया अपितु एक सेतु का काम किया। इन शासकों के आपसी मत भेदों के कारण ही सिकंदर उत्तरी भारत के विशाल जनपदों को नष्ट कर सका था।

वासुदेव महाजन (V.D. Mahajan) की किताब 'प्राचीन भारत का इतिहास' के पृष्ट 850 के अनुसार सिकंदर ईसा पूर्व 326 के फरवरी, मार्च महीनों में बिना किसी रोक-टोक के सिन्धु नदी को पार कर के आगे बड़ा। सिकंदर की सेना अभी टेक्सला से 5-6 मील दूर

ही थी कि राजा अम्बी उन के स्वागत के लिये आ पहुंचा। राजा अम्बी के साथ मित्रता हो जाने और सारी राज सत्ता उस के हवाले कर देने से सिकंदर और उस की सेना का मनोबल और बढ़ गया और उसे आगे होने वाली लड़ाइयों के लिये एक विशाल सेना और घर का भेदी भी मिल गया। सिकंदर को पौरव राज का पूरा भेद मिल गया और उसने कुछ समय अम्बी के पास विश्राम करने के पश्चात् अपनी और उस की सेना को जेहलम के पश्चिमी तट पर खड़ा कर दिया। जेहलम के पार अभिसार सम्राट राजा पुरु की राजधानी गोटा पानी थी। अभिसार की सीमा जेहलम से लेकर चिनाव तक थी और इसमें मौजूदा पुन्छ, राजौरी और जम्मू के चिनाव पार के इलाके शामिल थे। डरता हर-हर करता पौरव राज की विशाल शक्ति का अन्दाज़ा अम्बी को तो था ही, अब सिकंदर को भी हो चुका था। भारत की धरती पर पैर रखते ही उस को आभास हो चुका था कि भारत को विजय करना और उस का एकछत्र सम्राट बनना कोई आसान काम नहीं है। अन्दर से सिकंदर डर भी रहा था। पौरव राज से भारत की भूमि पर इस का यह पहला युद्ध था। महाराज पौरव की शक्ति और युद्ध कौशल का पता तो सिकंदर को लग चुका था। जुलाई का महीना था। गर्मी और बरसात के दिन थे। (V.D. Mahajan in Ancient India P-85) जेहलम ठाठें मार रहा था। दोनों सेनाएं आर-पार खड़ी थीं। एक दिन सिकंदर भेस बदल कर राजदूत बन कर पौरव राजा के दरबार में पहुंच गया और कहने लगा 'सिकन्दर बहुत ही शक्तिशाली सम्राट है। यह राज मुकुट उस के लिए कुछ भी नहीं है। उस ने ऐसे कई राजमुकुट हवा में उछाले हैं पर वही सिकंदर आप से मित्रता करना चाहता है। आप केवल उसे पंजाब के रास्ते भारत की राजधआनी की ओर जाने दो। आपको कोई भी नुकसान नहीं होगा। आप को सम्राट सिकंदर के इस प्रस्ताव का स्वागत करना चाहिए।'' पौरव राज ने प्रस्ताव सुना और मुस्करा कर उत्तर दिया ''राजदूत! हम मातृभूमि के सेवक पहले हैं और इसके उपरान्त किसी के मित्र। जिस से राष्ट्र की सत्ता और स्वतन्त्रता को नुकसान पहुंचे वह कार्य हम कभी नहीं कर सकते। चाहे आपके सम्राट कितने ही शक्तिशाली हों वह हमारे सिरों को कुचल कर ही भारत की राजधानी की ओर बढ़ सकते हैं। रही बात मित्रता की तो वह सारे विश्व को अपना मित्र समझते हैं। हम देश और राष्ट्र के शत्रु से भी हाथ मिलाते है पर रणभूमि में।'' इतना कहते ही भोजन का समय हो गया और महाराज पौरव राज ने दूत भेसधारी सिकंदर को भी भोजन के लिये आमन्त्रित किया और सब भोजन शाला में पहुंचे। सोने-चांदी के बरतनों में भोजन परोसा गया। सब की थालियों में भोजन था पर उस नकली राजदूत की थाली खाली थी। राजदूत ने हैरान होकर महाराज की ओर देखा तो महाराज ने राज पुरोहित को कहा कि इन की पसन्द का भोजन इन को परोसा जाए। आज्ञा होते ही सोने की थाली में सोने की बनी दो रोटियां और चान्दी की कटोरी में हीरे-मोतियों का चूर्ण उस दूत भेसधारी सिकंदर को परोस दिया। सिकंदर को बहुत आश्चर्य हुआ और कहने लगा ''यह कैसा मज़ाक है पौरव राज''। ''यह मज़ाक नहीं आप को आपका मनभाता भोजन ही परोसा गया है। इस से ज्यादा महंगा भोजन खिलाने में हम असमर्थ हैं।'' पौरव राज ने उत्तर दिया। विश्व विजय के अभियान पर निकला सिकंदर तड़प उठा और कहने लगा। ''आज तक किसी ने सोने-चांदी की रोटियां भी खाईं हैं ?''

''मेरे प्यारे मित्र सिकंदर। यदि आप यह जानते हो कि पेट सोने-चांदी की रोटियों से नहीं भरता और भूख नहीं मिटती, केवल अन्न से ही आदमी की भूख मिटती है तो फिर आप क्यों इन हीरे-मोतियों के लिये करोड़ों हसते-बसते घरों को बरबाद कर रहे हो ? अन्न के खेत कोई इन्सान के रक्त से नहीं लहलाते, उनको तो पसीने की खाद और शान्ति की हवा की आवश्कता होती है जिसको तुम नश्ट कर रहे हो। आपको तो सोने-चांदी और हीरे-मोतियों की भूख बहुत है। इसीलिए आपके लिए सोने की यह रोटियां बनवाई हैं।'' पौरव राज ने उत्तर दिया। अपने पहचान लिये जाने पर सिकंदर को बहुत लज्जा आई वह बहुत घबरा गया और पौरव राज ने सिकंदर को भोजन करवाया और अपने सैनिकों की सुरक्षा में सिकंदर को उस की सेना में भेज दिया। पौरव राज की इस सलाह और सलूक पर सिकंदर को करारा झटका लगा (कल्याण अप्रैल 1971, पृष्ट 877 गीता प्रेस गोरखपुर) पौरव राज की ओर से सिकंदर का मित्रता का प्रस्ताव ठुकरा दिये जाने पर दोनों की सेनाएं जेहलम नदी के आर-पार पुरी तरह लड़ने के लिये त्यार हो गई। जम्मू के प्रसिद्ध इतिहासकार प्रो० सुखदेव सिंह चाढ़क के अनुसार भी पौरव राज की राजधानी जेहलम के पूर्वी तट पर गोटा पानी थी जिस का निशान अब बचा नहीं हैं। श्री सुखदेव सिंह चाढ़क द्वारा लिखित किताब जम्मू राज पृष्ट 1281 गोटा पानी पाकिस्तान के शहर गुजरात के पास है। चाढ़क के मुताबक उस समय जम्मू का राजा अजय सिंह था जो पौरव राज का दामाद था। महाराजा पौरव जिन्हें यूनानी इतिहासकारों ने पौरस लिखा है की सैन्य शक्ति भी कोई कम नहीं थी। साढ़े छे फुट लम्बे जवान और परांक्रमी शूरवीर थे। उन की बहादुरी और युद्ध कौशल के चर्चे मद्र देश में ही क्या सारे भारत में थे। डाईओडोरस (Diodorus) ने सिकंदर और पौरव के बीच युद्ध के बारे में लिखा है कि पौरव की सेना में 50,000 पैदल, 3000 घुड़सवार, 1000 रथ और 130 हाथी थे। सिकंदर की सेना बहुत दिनों तक जेहलम के उस पार खड़ी रही लेकिन उसको नदी पार करने की हिम्मत नहीं हुई। एक दिन अन्धेरी रात के समय जब वर्षा हो रही थी, सिकंदर की सेना ने इतना शोर किया कि ऐसा लगता था मानों उस की सेना नदी पार कर रही है। इधर पौरव राज की सेना भी तैयार हो गई लेकिन हुआ इसके विपरीत। सिकंदर की सेना का यह केवल नाटक ही था जो पौरव राज को धोखा देने के लिए किया गया। हुआ यह कि सिकंदर की सेना ने लगभग 30 मील उत्तर में जाकर रात के अन्धेरे और मुसलाधार वर्षा में जेहलम पार किया और पौरव राज पर अचानक पीछे से हमला कर दिया जिसके लिये पौरव राज की सेना अभी तैयार भी नहीं थी। घमासान युद्ध छिड़ गया। जेहलम का पानी लाल हो गया। सिकंदर और पौरव राज भी आपस में भिड़ गए। पौरव राज हाथी पर थे और सिकंदर घोड़े पर। यूनानी इतिहासकारों के अनुसार पौरव राज हार गया और सिकंदर जीत गया। पौरव राज के शरीर पर छे घाव थे। उस को मुर्छित अवस्था में बन्दी बना लिया गया और सिकंदर के दरबार में पेश किया गया। सिकंदर ने पूछा पौरव राज बताओ आप के साथ कैसा सलूक किया जाए। ''जैसा एक राजा दूसरे राजा के साथ करता है''। पौरव राज ने उत्तर दिया। जवाब सुन कर सिकंदर पौरव पर बहुत प्रसन्न हुआ और उस को दोबारा सिंहासन पर बिठा दिया और भारत से लौटते समय पौरव राज को मद्र देश के अतिरिक्त पंजाब का भी गर्वनर बना

दिया। (Early India: A consise History Page 88 by D.N. Jha 2004 Manohar Publisher & Distributors New Delhi) युनानी इतिहासकारों ने इतिहास एक तरफा लिखा है। यहां पौरस हारा नहीं था। लड़ाई बराबर रही थी और युद्ध भूमि में ही सिकंदर ने यह भांप लिया कि यह लड़ाई वह जीत नहीं सकेगा। वरना सिकंदर के इस पूरे संग्राम में कोई दूसरा उदाहरण नहीं मिलता यहां सिकंदर ने किसी का जीता हुआ देश उसी समय लौटा दिया हो। इस युद्ध की याद में सिकंदर ने 326 ई० पू० एक सिक्का भी ज़ारी किया जिसमें पौरस हाथी पर बैठा और सिकंदर घोड़े पर चड़कर आपस में लड़ रहे हैं। (Early India पृष्ट (88 above)

यहां पर यह भी सिद्ध हो ही जाता है कि कोई भी जीतने वाला अपने शत्रु के नाम के सिक्के जारी नहीं करता। लगता है कि आगे होने वाली लड़ाइयों के लिये सिकंदर और पौरस में सन्धी हो गई होगी तभी तो सिकंदर ने पौरस राज को सारे मद्रदेश के साथ पंजाब का राज भी दे दिया था।

अभिसार (पुच्छ, राजौरी और अखनूर) के शासक पौरव राज के साथ लड़ाई और फिर सन्धी हो जाने पर सिकंदर और उसकी सेना का मनोबल बहुत बढ़ गया और उसके दल-बल में भी तिगुनी बड़ोतरी हो गई। इस खुशी के मौके पर सिंकंदर ने 326 ई० पू० बहुत जश्न मनाए और सिक्का भी जारी किया। यदि मान भी लिया जाए कि पौरव राज हार गया लेकिन भारत भूमि पर पांव रखते ही सिकंदर को भारी झटका लगा उस की सेना का मनोबल भी गिर गया तभी तो सिकंदर ने अपने थके-हारे और कम दिल डरपोक सैनिकों को यहां से ही स्वदेश भेज दिया। इस बारे में जम्मू के इतिहासकार प्रो० सुखदेव सिंह चाढ़क ने जम्मू राज के पृष्ठ 128-129 पर लिखा है कि जम्मू का राजा उस समय अजय सिंह था जिस की शादी पौरस राजा की राजकुमारी से हुई थी। अजय सिंह गोटा पानी में सिकंदर से लड़ते-लड़ते वीर गति को प्राप्त हुए और उसकी वीर रानी मद्रराज पौरस राज की राजकुमारी उसके साथ सती हो गई। सर औरल स्टीन के मुताबक सिकंदर और पौरस की यह लड़ाई 'नन्दना' के निकट हुई थी। जिसका जिकर उन्होंने अपनी किताबों में किया है। श्री चाढ़क की किताब जम्मू राज के मुताबिक सिकंदर ने वापसी पर जम्मू का राज भी अजय सिंह के पुत्र विजय सिंह को वापिस कर दिया था। भारत वर्ष के मद्र जनपद पर सिकंदर के हमले का जिकर पं० दया कृष्ण गर्दिश ने "तारिख डोगरा देस" की भूमिका लिखते समय पृष्ठ 8 पर इस तरह किया है। "जम्मू की पहाड़ियों का जिकर सबसे पहले हमें यूनानी इतिहासकारों द्वारा किया गया मिलता है। उन्होंने दो देशों का ज़िकर किया है। अभिसार और कैथिउई (KATHAIOI). अभिसार को आज पुन्छ कहते हैं और कैथिउई रावी नदी के किनारे-किनारे दूर-दूर तक पहाड़ों के दामन में फैला हुआ था और इस की राजधानी साकंल (स्यालकोट) थी। STRABO ने कैथिउई को एक बहुत बड़ा गणतन्त्र बताया है........कैथिउई गणतन्त्र ने सिकंदर के आगे झुकने से इन्कार कर दिया। कैथिउई और कठुआ भूगोलक दृष्टि से एक ही जगह के दो नाम हैं।" पं० दया कृष्ण गदर्श ने एक और इतिहासक (MACRINDLE) की किताब Invasion

of India by Elexender the great'' सिकंदर महान का भारत पर हमला'' में भी कैथिउई गणतन्त्र और इस के रस्मों-रिवाजों के बारें में भी बहुत कुछ लिखा है। STRABO के मुताबक केथिउई की सेना ने पहाड़ियों की गोद में ''बासी लूई'' के मैदान में सिकंदर का मुकाबला किया था। इन्होंने लिखा है कि केथिउई के लोग बड़े शूरवीर और जंगजू थे। यह लोग सिकंदर की सेना के सामने आने से पहले अभिसार के राजा पौरस राज को हरा चुके थे। बासी लुई की लड़ाई का जिकर आगे/किया जाएगा।

इतिहास से सम्बन्धित स्त्रोतों-सूत्रों और सामग्री का ठीक तरह से अध्ययन करने से यह धारना अवश्य बनती है कि उस समय यूनान और भारत के विद्वान लोग कौन थे जिन्होंने उस समय विश्व के हालात पर अपनी छाप छोड़ी। भारत में आचार्य चाणक्य चर्चा की चर्म सीमा पर थे। दूसरे थे सिकंदर के गुरु अरस्तु। उस समय की परिस्थितियों को समझते हुए चाणक्य ने यह भांप लिया की भारत के राज वंशों की हालत बहुत बुरी थी। शासक बड़े ऐशपरस्त हो चुके थे। छोटे-छोटे राज्य थे और यह आपस में छोटी-छोटी बातों पर लड़ते-झगड़ते रहते थे। चाणक्य ने यह देखते हुए इन सब छोटे-छोटे राज्यों और राजाओं को चेतावनी देकर इकट्ठा किया लेकिन सफल नहीं हुए। फिर भी उन्होंने जिन राजाओं को सिकंदर की चुनौतियों का सामना करने के लिए तैयार कर लिया उनमें कैथिउई, अभिसार और बहुत से कोट, कोटलों के राजे शामिल थे।

वी० डी० महाजन की किताब प्राचीन भारत (Ancient India) के मुताबिक सिन्धु और विपाशा (व्यास) नदियों के बीच बसे डोगरों के इस प्रदेश में सिकन्दर 19-20 महीने लड़ता रहा। लगभग इसी समय में चाणक्य भी मगध में एक शक्तिशाली राज्य की स्थापना करने में सफल हो गया जिसके राजा थे सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य। इन्होंने एक बड़ी भारी सेना तैयार कर ली और सिकंदर से लोहा लेने के लिये भारत के उत्तर की ओर बढ़ना शुरू कर दिया। तब तक त्रीगर्त के सब छोटे-बड़े शासक भी एकजुट हो गए और व्यास नदी के पूर्वी तट पर काठगढ़ के स्थान पर एकत्रित हो गए। सिकंदर की पैनी नज़र इन सब को देख रही थी। यही कारण था कि वह सिकंदर जिसने सिन्धु जैसे नदी को तो सुगमता से पार कर लिया लेकिन एक छोटी-सी नदी व्यास में ई० पू० 325 के सितम्बर-अक्तूबर में अपने दल-बल के साथ वह डूब गया। दरअसल यूनानी इतिहासकारों ने इतिहास को एक तरफ़ा अपने नायक सिकंदर के हक में लिखा है। सच्च तो यह है कि डुग्गर प्रदेश में सिकंदर की जितनी भी लड़ाइयां हुई उनमें उस की बहुत ज़्यादा सेना मारी गई और बची-खुची सेना बीमार और घायल हो गई थी। सिकंदर समेत सेना का मनोबल भी बहुत गिर चुका था। यदि ऐसा नहीं होता तो विजय पर विजय प्राप्त करने वाला सिकंदर वापिस होने पर बेबस और लाचार नहीं होता। भारत के इन राजाओं की फूट और दुर्दशा के बारे में प्रो० सुखदेव सिंह चाढ़क के मुताबिक India Western Lands के पृष्ठ 301 यूनानी इतिहासकार CURITIUS और ARRIAN के हवाले से लिखते हैं ''टेक्सला का राजा अम्बी और अभिसार का राजा पौरस आपस में ही शत्रु थे ही वह अपने आस-पास के आज़ाद कबीलों के भी शत्रु थे। इन दोनों राजाओं

की मालवकों और शुद्रकों के साथ भी युद्ध हो चुके थे। पौरस की कैथिउई के राजा अपने भतीजे पौरव राज II से भी अनबन रहती थी और इसी तरह मौसिकनोंजों और सांबोस की भी आपसी दुश्मनी थी।''

''सिकंदर के हमले से पहले डुग्गर प्रदेश की हालत के बारे में K.P. Jaswal in Hindu Polity में लिखा है की उस समय सारा डुग्गर प्रदेश जेहलम से लेकर कांगड़ा तक 6 त्रिग्रतों में बटा हुआ था और यहां का हर पुरुष एक सैनिक था और सारा राष्ट्र एक छावनी। ''तारीख डोगरा देस पृष्ठ 10, सिकंदर के हमले के समय जेहलम से व्यास तक लगभग 36 कीट कोटलें, दुर्ग या नगर थे'' इन में कुछ एक इस तरह हैं। रावला कोट (POK), स्यालकोट (पाकिस्तान) लोहर कोट, वाला कोट, स्वर्ण कोट (पुन्छ), सौरा कोट (शिव खोडी), ठाकरा कोट, सलाल कोट, नाड़ कोट, ढक्की कोट, साबला कोट, जिज़ कोट, केन्ठी कोट, ठिल्लुकोट, गाड़ीकोट, (रियासी, उधमपुर) मनकोट, सुन्दरीकोट, रामकोट (बिलाबर, बसोहली), शल्य कोट, प्रताप कोट, नाई कोट (हीरानगर) भलवाल कोट, (गढ़ी, अखनूर), मोहरगढ़, बजीर कोटला, मण्डी कोटला (सांबा) जैमलकोट कठूआ और रावी के पार नगर कोट (कांगड़ा) और पठानकोट। सिकंदर ने एक बहुत बड़ी सेना के साथ जिस में राजा अम्बी और पौरव की सेना भी शामिल थी ने चिनाब (आसकिनी) नदी को पार किया और यह सेना बन-ज्वाला की भांति आगे बढ़ने लगी। उस के रास्ते में जो भी कोट कोटला या नगर, जागीरदार या रजवाड़ा आया, उसका सिकंदर ने खुल कर दमन किया। उस ने इन सब कोटलों को जलाकर राख कर दिया। जब सिकंदर के इस महान षड्यन्त्र की सूचना शाकल (शल्य कोटला या शाल या छुगला पहुंची (जो अब घगवाल के पास एक कोटला नाम का बन है) यहां कैथिउई गणतन्त्र (पूर्वी मद्र) की राजधानी थी और यहां का राजा पौरव राज II (Junior) था जो बड़ा नौजवान, साहसी शूरवीर था और अप्पर मद्र नरेश अपने चाचा पौरव राज को भी हरा चुका था। पूर्व मद्र के राजा दूसरे पौरव राज ने अपने सेनापतियों के साथ परामर्श कर के और शपथ लेकर यह निर्णय किया कि वह आखरी दम और आखरी सैनिक तक सिकंदर से लड़ेंगे और जीतेजी उस को न तो अपने शहर में आने देंगे और न आगे ही जानें देंगे। उन्होंने नगर से एक कोस पश्चिम में वहिल प्राचीन बहलीक नदी के दोनों तरफ वासी और लूई के मैदानों में अपनी सेना को लामबद्ध कर दिया। वासी लूई की लड़ाई का जिकर नृसिंह दास नर्गिस ने भी तारीख डोगरा देश के पृष्ठ 9 पर STRABO के हवाले से किया है। नृसिंह दास नर्गिस ने लिखा है कि यह लड़ाई कैथिउई के मैदानों में जो पहाड़ों की गोद में है, हुई थी नर्गिस ने आगे लिखा है कि उन्होंने शाकत देव नाम वाले एक दुर्गम व्यूह की रचना की जिसे अंग्रेज़ी में Waggan Formationकहते हैं। वह बहादुरी से लड़े और मरते दम तक शस्त्र नहीं छोड़े और हार नहीं मानी। इस लड़ाई में अम्बी और पौरव की सेना भी सिकंदर के साथ थी। वासी लूई के पास एक नगर के लोगों ने जोहर किया। मरद रण भूमी में शहीद हो गये और स्त्रियों ने शहर को आग लगा दी और बच्चों समेत इस आग में कूद पड़ीं' ''लेकिन नर्गिस जी ठीक से इस मैदाने जंग और नगर की निशानदेही नहीं कर सके आखिर में नर्गिस ने लिखा है कि यह बहादुर जांबाज डोगरों का वही शहर था

जिस ने पहली बार सिकंदर को बता दिया था कि हिन्दोंस्तानियों के लिये गुलामी की ज़िंदगी से मौत हजार गुना बेहतर है।" वासी का मैदान नौनाथ गांव में कथवालों के तालाब के पास वहिल नदी के पूर्वी तट पर शल्य कोटला से एक $1\frac{1}{2}$ कोस पश्चिम की ओर है। और लूई का मैदान वहिल नदी के पश्चिमी तट पर शल्य कोटला से 1 कोस पश्चिम में है। अब तक नर्गिस दास नर्गिस समेत कोई भी इतिहासकार इन इतिहासिक तीन स्थलों की निशानदेही नहीं कर सके थे। मेरी खोज-पड़ताल के मुताबिक वासी लूई नाम के दो मैदान और जले हुए शहर शल्यकोटला के अवशेष नौनाथ और टपेयाल गांवों में नृसिंह नगर घगताल के पास अब तक बिखरे मिलते हैं। नौनाथ के तालाब को आज भी कयवालों का तालाब कहते हैं और घगवाल के पास जसरोटियों की मण्डी को अब भी कोठेवालों की मण्डी कहते हैं।

वासी लूई का युद्ध :- वासी लूई के इतिहासिक मैदान में शल्य कोटला के पास सिकंदर और कठों का घमासान युद्ध हुआ था। यहां कठों ने सिकंदर की शक्ति को पूरी तरह नष्ट कर दिया और इसी युद्ध क्षेत्र में सिकंदर को इतनी मार पड़ी जिसने आगे चल कर सिकंदर को अपने देश वापिस जाने पर मजबूर कर दिया। MACRINDLE के मुताबक जब लाहौर (लवाका, लवकोट या लव पुरा) को जीत कर रावी नदी (Hvdraotes) को सिकंदर ने पार कर लिया था और गंगा के मैदानों की ओर बढ़ने का निश्चय किया तो उसे पता चला कि शागला के कठों ने सिकंदर को आगे बढ़ने से रोकने के लिए पीछे से आक्रमण करने की योजना बनाई है तो उसने पीछे जाकर कठों और दूसरे कबीलों से भिड़ने के लिए मजबूर होकर निर्णय किया और दोबारा रावी को पार कर के पूर्व की ओर बढ़ने की बजाये शागला (शल्य कोटला) की ओर बड़ा। हालांकि सेना बड़ी तेज गति से चलती है फिर भी इसे 60 मील पर शागला पहुंचने के लिए तीन दिन का समय लगा। MACRINDLE के मुताबिक सिकंदर की सेना तीसरे दिन शाम को शागला पहुंची। पहले मेकरिंडल और फिर ह्यूनसांग की निशान देही के मुताबक शागला लाहोर से 60 कोस दूर (125°, 30, 30°, 32) पर है। MACRINDLES Ancient India as described by PTOLEMY — Today & Tomorrow Printers & Published 24-B/5 Karol Bagh New Delhi Pin 110005 प्रचलित दंत कथाओं और इतिहासक सूत्रों के मुताबिक सिकंदर के हमले का समाचार सुनते ही कैथिउई गणतन्त्रों की सारी सेना शागला (शल्य कोटला) के एक मन्दिर के आंगन में इकट्ठी हुई और शपथ ली कि जब तक उनके दम-में-दम है वह आखिरी सैनिक और रक्त बून्द तक सिकंदर से लड़ेंगे और उससे हार नहीं मानेंगे। और रणभूमि में मरना पसंद करेंगे और जीते जी शत्रु को नगर में प्रवेश नहीं करने देंगे। यहां की वीर नारियों ने भी शपथ ली कि वह भी रणभूमि में अपने सैनिकों की सहायता करेंगी और सम्मान से मरेंगी। इन के बारे में पं० दयाकृष्ण गर्दिश ने स्ट्रवो (STARBO) के हवाले से तारीख डोगरा देश में लिखा है कि रणभूमि में सारे देश में इन कठों का कोई सानी नहीं था। इनकी शूरवीरता का लोहा पूरे देश में माना जाता था। इससे पहले भी वह जेहलम और अभिसार के राजाओं का अभिमान

चकनाचूर कर चुका था। अब इस युद्ध में सिकंदर की सेना के अतिरिक्त राजा अम्बी और पौरव की सारी सेना भी एक साथ मिलकर कठों के साथ युद्ध करने वाली थी।

सिकंदर की सेना के शागला (शल्य कोटला) पहुंचने से पहले ही कठों की सेना सजे हुए हाथी, घोड़ों और रथों पर और पैदल तीर-कमान, नेजे, भाले, ढाल-तलवारें लेकर पहले ही वासी और लूई (लुइन) (नृसिंह दास नर्गिस की तारीख डोगरा देश) के मैदानों में अपने नौजवान राजा छोटे पौरस या (Poros Junior) की कमान में सिकंदर की सेना के साथ दो-दो हाथ करने और मरने-मारने को तैयार खड़ी थी। इन्होंने एक शाकत देव व्यूह की रचना की थी जिसे शत्रु आसानी से नहीं तोड़ सकता था। यूंही सिकंदर की सेना लूईन के पास पहुंची कठों की सेना ने उस पर हल्ला बोल दिया। कई दिनों तक घमासान युद्ध हुआ, सिकंदर की सेना पर कठवालों के नेजों, भालों और तीरों की बुछाड़ ने सिकंदर के नाक में दम कर दिया। कठों के आत्मघाती दस्तों ने ऐसी तबाही मचाई जिस के बारे में उस ने कभी सोचा भी न था। ऐसा लगता है कि सिकंदर जो सीधा जम्मू से लाहौर की ओर चला गया, उसने कठों की ताकत का अन्दाजा पहिले ही लगा लिया था। तभी तो वह कठों से बच कर निकल गया। उसे लाहौर के पास रावी नदी को पारकर के पता चला कि कठ उसका पीछा करेंगे और कभी भी वह उस पर पीछे से आक्रमण कर देंगे जब सिकंदर आगे किसी शत्रु देश से लड़ रहा होगा। तभी तो उसने 60 मील पीछे आकर कठों से लोहा लिया। लुई के मैदान में जब सिकंदर की सेना कम पड़ने लगी तो उस ने पौरस से 5000 और सेना गोटा पानी से मंगवाने को कहा जिस पर पौरस ने 5000 और सैनिक अपने देश से मंगवाए। कठों की सेना ने शत्रु सेना का बुरा हाल कर दिया और कभी सिकंदर का पलड़ा भारी हो जाता तो कभी कठों का। जब पौरस सेना की 5000 सेना का नया दल सेना से मिला तो सिकंदर का पलड़ा भारी हो गया और कठों की सेना थोड़ा पीछे हट कर ''बासी'' के मैदान में डट गई। इस का मनोबल भी गिरने लगा। एक घटना यह घटी कि शल्य कोट का नौजवान राजा पौरव राज शत्रु के घेरे में आ गया। सिकंदर और पौरव राज, दोनों नौजवान थे दोनों में बड़े घमसान युद्ध हुआ और दोनों के घोड़े भी अति घायल हो गये लेकिन दोनों आपस में तलवारों से भिड़ने लगे। सिकंदर के एक घातक वार ने पौरव राज का सिर धड़ से अलग कर दिया। दंत कथाओं के अनुसार पौरव राज का धड़ भी सिकंदर से लड़ता रहा। राजा के मरने का समाचार जब शल्य कोटला (शागला) पहुंचा तो लोगों ने शहर को आग लगा दी और नगर की सभी नारियां बच्चों समेत जलती आग में कूद कर सती हो गईं। इसी तरह रानियों ने भी महलों को आग की भेंट कर दिया और फिर सब रानियों ने राजा का शव न मिलने पर कुएं में कूद कर अपने प्राण त्याग कर वीर गति पाई। इस लड़ाई में सिकंदर को अपने सैनिकों के अनगिनत शव, कैथिउई के सैनिकों के 17000 शव, और 70,000 अतिघायल कठ सैनिकों के सिवाये कुछ नहीं मिला। नगर और राजमहलों को आग लगाने से पहले यहां की वीर नारियों ने शहर की सारी दौलत और कोष आदि की कुओं में फेंक दिया। आसपास के लोग अब भी कुओं की नशानदेही करते हैं। कोटला के वन में आज भी 25 के लगभग तालाब हैं और

इन में से एक तालाब को रानी का तालाब कहते हैं। जिस कुएं में रानियों ने कूदकर अपने प्राणों की आहुति दी थी उस को आज भी रानी का कुआं कहते हैं।

आज चाहे कथवालों का एक भी वंशज या वशिंदा यहां नहीं है लेकिन बासी और लूई (लूईन्न) का मैदान (खेत), शल्य वाली लाम्ब, नाई कोट, मेहरों का गढ़, नागों के 9 स्थान, लूई के साथ खारका, तालाब और बासी (नौनाथ गांव) के पास कथवालों का प्राचीन तालाब और सान्धि (सन्धि) गांव, नौनाथ के तालाब पर अति प्राचीन पाशान युग का गढ़ा हुआ पाषान का शिवलिंग, शल्य कोटला (प्राचीन शागला) का वन और इस वन में जले कटे पत्थर, बुनियादों के निशान, बहुत प्राचीन ठीकरियां और ईटें, इसी वन में एक स्थान का नाम शल्य, वन के भीतर गढ़ियों के होने का प्रमाण, सजोती माता और टंडन झीरी माता की महाभारत युग की देरियां (मन्दिर) और इस के साथ ही कथवालों की मण्डी का होना लेकिन बिना कथवालों के, ऐसे प्रमाण हैं जो कथवालों (कैथिउई) के इस गौरवशाली नगर की वीरता की गाथा गाते नज़र आते हैं। कैथिउई के बहादुर डोगरा कथवाल योधा मर कर अमर हो गए लेकिन इन्होंने सिकंदर की कमर भी तोड कर रख दी और उस की आत्मा को भी झंजोड़ कर रख दिया। धक-धक करते जलते हुए इस नगर में सिकंदर पैर भी नहीं रख सका था।

कैथिउई के मैदान में अभी युद्ध चल ही रहा था कि सिकंदर को पता चला कि विपाशा (व्यास) नदी के पूर्वी तट पर त्रीगर्तों की सेना उस से लोहा लेने के लिए तैयार हो रही है। इस बात का पता चलते ही सिकंदर ने अपना रास्ता फिर बदला और तन-मन से घायल सिकंदर और मनोबल विहीन और घायल उस की सेना आगे बढ़ी और त्रिगर्तो को परास्त करने के लिए आसानी से रावी नदी को पार कर और आगे बढ़ गई।

सिकंदर की थकी हारी घायल और मनोबल विहीन सेना जब व्यास (विपाशा) नदी पर पहुंची तो नदी के पूर्वी तट पर बहादुर त्रिगर्त शूरवीरों की विशाल सेना ने हर-हर महादेव के जय घोषों के साथ सिकंदर की सेना पर तीरों की बारिश कर के उसका स्वागत किया और घोषणा कि ''यदि वह जीवत रहना चाहता है तो वापिस चला जाये वरना हम उसे व्यास नदी पार नहीं करने देंगे।'' सितंबर (325 ई.पू.) का महीना था व्यास नदी ठाठें मार रही थी। सिकंदर ने सेना को नदी पार कर आक्रमण करने का आदेश दिया। जब सैनिक नदी पार करने लगे तो सामने से त्रीगर्तों की सेना ने तीरों की बोछाड़ कर दी। अब देखते-ही-देखते नदी में सिकंदर की सेना के शव बहने लगे सेना, पहले से ही थकी हुई, घायल और मनोबल विहीन थी। इनकों घरों से निकले बहुत समय हो चुका था। कैथिउई की सेना ने पहले ही इस सेना की कमर तोड़ दी थी और अब सामने त्रिगर्तों की सेना देख कर और इन का जयघोष सुन कर सिकंदर की सेना का मनोबल बिल्कुल टूट गया और फिर सामने से त्रिगर्तों की चुनौती। यह सब देख कर सैनिकों ने आगे जाने से इन्कार कर दिया। अन्दर से सिकंदर का मनोबल भी टूट चुका था। फिर भी उस ने अपनी सेना को संबोधित करते हुए एक बड़ा जोरदार, जोशीला भाषण दिया लेकिन सेना पर इस का कोई प्रभाव नहीं हुआ। सारी सेना

बेजान-सी चुप होकर भाषण सुनती रही। इस के उपरान्त सिकंदर की सेना का एक जरनैल जिस का नाम कोईनोस था उठा और सिकंदर को उसके भाषण के उत्तर में कहने लगा- "महाराज हम में से कुछ सैनिक जो लड़ाई के योग्य नहीं थे या जिन का मनोबल कमजोर था आप ने गोटा पानी में पौरव राज के साथ युद्ध के उपरान्त वापिस अपने देश भेज दिए थे। बचे हुए कुछ सैनिक आप ने जीते हुए नगरों में बसा दिये। जो यूनानी सैनिक हमारे साथ चल रहे थे। उन में से बहुत से सैनिक लड़ाइयों में मर चुके हैं या अंगहीन हो चुके हैं जिन को हम पीछे रास्ते में ही छोड़ आए हैं और बहुत से योद्धा बीमारी से मर गये हैं। हमारी सेना में अब बहुत कम सैनिक बाकी रह गए हैं। बचे-खुचे सैनिकों का मनोबल भी गिर चुका है। आप देख लें कि हम कितने लोग घरों से निकले थे और कितने बाकी बचे हैं? होनी बड़ी प्रबल है। आदमी को कभी तो किसी की नेक सलाह मान लेनी चाहिए।" जरनैल कोइनोस के इस भाषण का सारी सेना ने जोरदार तालियों की गूंज से स्वागत किया। यह सुन कर सिकंदर ने कोइनोस की सलाह को मानते हुए पीछे मुड़ने और अपने देश मकडोनिया जाने का निर्णय ले लिया V.D. Mahajan द्वारा लिखित प्राचीन भारत का इतिहास (Ancient India) पृष्ठ 85 के मुताबिक सिकंदर की सेना ई.पू. 325 के अक्तूबर महीने में व्यास नदी के पश्चमी किनारे से ही अपने देश के लिए प्रस्थान कर गई। यह स्थान अब हिमाचल प्रदेश में काठगढ़ के नाम से मशहूर है और तब से आज तक इस खुशी पर यहां हर साल मेला लगता है। यहां यह कहना गलत न होगा कि यदि सिकन्दर व्यास नदी को पार करने की कुचेश्टा करता भी तो उसकी सेना विपाशा की लहरों में ही समा जाती।

और इस तरह विश्व को विजय करने को निकले सिकंदर का भारत विजय का स्वप्न स्वप्न ही रहा। और उसका अभियान बुरी तरह असफल रहा। Dr. R.S. Tripathi के अनुसार हिन्दोस्तान में सिकन्दर की सेना की विज़य का सिलसिला किसी तरह भी आसान या सुगम नहीं रहा। निसन्देह हिन्दोस्तान के चन्द राजाओं और कुछ स्वतन्त्र कबीलों ने सिकन्दर से हाथ मिला लिया था, हार मान ली लेकिन इस सब के विपरीत बहुत से राजे-महाराजे और कबीले सिकन्दर के साथ इतनी शूरवीरता से लड़े कि सिकन्दर की सेना के छक्के छूट गए। जिस पर यूनानी सेना जो बहादुर फारसी सेना को करारी हार दे चुके थे और जो अपने घरों से बहुत देर पहले निकले थे, और इन रोज-रोज की न खत्म होने वाली लड़ाइयों से तंग आ चुके थे, के दिलों में डर और खौफ ने बहुत बुरा हाल कर दिया था। जिन्होंने फारसी के राजाओं के राजमुकुट घास के तिनकों की भांति हवा में उछाल दिये थे। भारती योद्धाओं ने इन उपद्रवी आक्रमणकारियों के दांत खट्टे कर दिये थे। भारतीयों ने भी सिकन्दर के भारत से चले जाने और फिर जून 323 ई.पू. इस के मर जाने के पश्चात् इस बात को भुला दिया और यूनानियों के आक्रमण को बची-खुची सब निशानियां भी नश्ट कर दी गईं। (Indian Historical Quartarly 1940 in Ancient India by V.D. Mahajan P-559) डा० आर० एस० त्रिपाठी का यह कहना ही सिकंदर का जम्मू में शूरवीर डोगरों द्वारा पराजित होने का प्रमाण ही समझा जाना चाहिये।

बिपाशा से वापिस होते समय सिकंदर ने विजय किये हुए राज्यों के छः भाग किये, और इन के लिये छः ही पट्टादार या गर्वनर बनाये। सिन्धु नदी के पूर्व में 3 भाग और सिन्धु नदी के पश्चिम में 3 भाग। सिन्धु और जेहलम नदी के दरम्यान राजा अम्बी और जेहलम और व्यास के दरमन तीन जन पदों का गर्वनर पौरस को बनाया। सिंधु के पश्चिम में तीनों गर्वनर यूनानी थे। वापसी पर बहुत से कबीलों ने सिकंदर का डट कर पीछा किया। मलोई और आकसी डरोकी के गणतन्त्रों ने सिकंदर के नाक में दम कर दिया जिसके बारे में सिकंदर ने कभी सोचा भी न होगा। सिकंदर जो पहले ही बीमार और घायल था, इन लड़ाइयों में बुरी तरह घायल हो गया। मलोई और आकसीड्रोकी की सेना जिस में 90,000 पदाति दल 10,000 घुड़सवार और 900 रथ शामिल थे ने सिकंदर की सेना को नाकों चने चबा दिये और सिकंदर की सेना ने बड़ी मुश्किल से इन से पीछा छुड़ाया और भागते बनी। कहते हैं इन राज्यों के ब्राह्मण भी कलम-दवातों को छोड़ कर सैनिक बन गए थे।

जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है कि सिकंदर के हमले का सारा हाल उन यूनानी लेखकों और इतिहासकारों ने लिखा है जिन्होंने सिकंदर को महान कह कर उसका मनोबल इतना बड़ा दिया कि वह अगर थोड़ा और आगे चला जाता तो इतिहास कुछ और होता लेकिन सिकंदर ने अपने जरनैल कोइनोस का आभारी होना होगा कि उसने समय रहते उसको वापिस चलने की सलाह दी। लड़ाइयों का विवरण भी इन लोगों ने अपने नायक सिकंदर के हक में लिखा है। गोटा पानी के युद्ध में पौरव राज हारा नहीं था। वह लड़ाई बराबर रही थी। दोनों में लड़ाई के मैदान में ही मित्रता हो गई तभी तो पौरव राज को अपने राज्य से भी दुगना राज्य दे दिया गया और मित्रता के उपलक्ष्य में सिकंदर ने एक सिक्का भी जारी किया A consise History of Early India by D.N. Jha पृष्ठ 88. सिकंदर चूंकि बहुत बीमार था। इसलिये उसको पौरस और अम्बी की सेना की देख-रेख में पुराने रास्ते से ही वापिस भेजा गया। इस की सेना का बड़ा हिस्सा किसी नकली सिकंदर की कमान में समुन्द्र के रास्ते यूनान के लिए रवाना हो गया। बीमार सिकंदर को या इसका शव चारपाई पर रख कर ले जाया गया। यूनानी इतिहासकारों ने तो लिखा है कि सिकंदर वलोचेस्तान के रास्ते यूनान चला गया। यहां ई.पू. जून 325 में इस की मृत्यु हो गई। दरअसल जम्मू और रियासी के बीच किसी जगह सिकंदर मर गया और जहांगीर की तरह उस की अन्तड़ियां या शव को सलाल गांव में चिनाब नदी के पूर्वी तट पर दफना दिया गया। अब भी उस स्थान को चुनेना देवता कहते हैं। यह शब्द यूनानी से चूनानी बना लगता है। हिन्दुओं के किसी भी देवता का नाम चुनैना देवता नहीं है। हालांकि वहां पर साथ ही एक नाग देवता का स्थान भी है। चुनैना देवता की अजीब किस्म की मूर्ति है और इस के मुंह में गुड़ का प्रसाद लगातें हैं। और बकरें की बली भी देते है। यह स्थान मैंने स्वयं देखा है।

नरसिंह दास नर्गिस समेत बहुत से इतिहासकारों का यही मत है कि सिकंदर तो चिनाब की बादी में ही मर गया था, परन्तु उस के जरनैलों ने उस की मौत की खबर छुपा रखी जो उन्होंने वैवलोनिया जाकर ही आम की। (SANDROFOGSUS) जिसको अंग्रेज़ी में

Devourer of Elaxander कहते हैं। सिकंदर की सबसे पहले कमर तोड़ना, उसको लाहौर से पीछे आने पर मजबूर करना, सिकंदर को घायल करना, उस के घोड़ों को मार देना और वापसी पर चिनाब नदी के तट पर उसकी मौत हो जाना कैथिउई (शल्यकोटला) के शूरवीर, आत्म घाती कथबालों की बदौलत ही मुमकिन हो सका जिनके राजा पौरव राज II समेत 17,000 वीर योद्धा शहीद हो गये, 70,000 योद्धा घायल हुए। यहां की वीर नारियों ने भी स्वयं पूरे नगर को आग लगा दी और तमाम बच्चों और रानियों समेत आग में भस्म हो गईं थी। शल्य कोटला नाम के इस वन की पुरातत्व विभाग से खोज-पड़ताल करवाना और इस खोज को आगे ले जाने का काम अब आप सब सुयोग्य इतिहासकार ही कर सकते हैं। सिकन्दर बड़ा ही क्रूर और जिद्दी शासक था। उसको महान कदापि नहीं कहा जाना चाहिए। उसका वीर डोगरों ने हर लड़ाई में डट कर सामना किया और उस को पीछे भागने पर मजबूर कर दिया और वापसी पर वह यहीं चिनाव की वादी में जम्मू के आस-पास किसी जगह मर भी गया। यदि वह अपने देश मकदुनिया जीवित चला गया होता तो कहीं-न-कहीं उस की समाधी तो सुरक्षित होनी चाहिए थी जो इतिहासकारों की खोज-पड़ताल के मुताबिक कहीं भी नहीं मिली है।

ooo

134/4 जे.डी.ए होसिंग कॉलोनी
रूपनगर, जम्मू। पिन 180013
मो. (941911512)

निजता ऐसी हो तो दूसरों को भी अच्छी लगे

(वरिष्ठ कवि विनोद कुमार शुक्ल से महावीर अग्रवाल की बातचीत)

महावीर अग्रवाल : कविता लिखना आपने कब से शुरू किया ? यदि स्मरण हो तो यह भी बताइए कि, आपकी प्रथम कविता का विषय क्या था? साथ ही यह भी बताइए कि आपकी प्रथम कविता किस पत्रिका में और कब छपी थी ?

विनोद कुमार शुक्ल : कहानी लिखने के पहले से ही जैसे कविता लिखना बचपन में ही शुरू हो गया था। परन्तु कहानी, कविता के पहले 1956 में छपी। 1960-61 में 'कृति' में एकसाथ आठ कविताएं पहली बार छपी थीं। इन कविताओं को पहली कविता मान लें। ये कविताएं मुक्तिबोध जी ने छपने के लिए श्रीकांत वर्मा को भेजी थीं। 'कृति' के सम्पादक श्रीकांत वर्मा और नरेश मेहता थे। कृषि महाविद्यालय जबलपुर की वार्षिक पत्रिका में कहानी 'नवाब हुज़ूर' छपी थी। 'कृति' के कविता विशेषांक में भी कविताएं छपी थीं।

महावीर अग्रवाल : आप कविता क्यों लिखते हैं ?

विनोद कुमार शुक्ल : यह बताना बहुत कठिन है लेकिन यह हमेशा का सच है कि कविता को जानने का सच प्रकृति की तरह हो जाता है। कविता को जानने का सच यद्यपि बहुत कठिन है। इसको लिखकर ही जानना एक रास्ता बचा होता है। इस रास्ते पर चलते हुए दूसरों की कविता को पढ़ने का सच पेड़ की छाया की तरह मिलता है। कागज़, कलम के साथ कविता लिखने की कोशिश करनी पड़ती है, जो कविता को ढूंढने की तरह है। रचना दिखती नहीं। यह छुपा-छुपाई को देखने की तरह है। जिस शब्द के सहारे आगे बढ़ते हैं, हो सकता है वह शब्द आपका साथ छोड़ दे। वाक्य साथ छोड़ देते हैं। कई बार पूरी लिखी कविता साथ छोड़ देती है और बदलकर दूसरी कविता हो जाती है।

महावीर अग्रवाल : आप अपनी रचना-प्रक्रिया के बारे में कुछ बताइए ?

विनोद कुमार शुक्ल : प्रत्येक रचना की रचना-प्रकिया रचना के साथ समाप्त हो जाती है। रचना-प्रक्रिया का कभी दुहराव नहीं होता, अगर दुहराव होता तो रचना-प्रक्रिया एक सांचा होती और कविताएं सांचे में ढली होतीं। योजना बनाकर लिखना रचना को सीमित करता है। रचना में रचना का सम्पूर्ण अर्थ जैसा कुछ नहीं होता। उसमें अर्थ की गुंजाइश हमेशा होती है। जैसे किसी कुएं में पानी झिरता है और कुआँ सूखता नहीं। अर्थ की गुंजाइश में अर्थ की जगह बनी रहती है। जिस रचना में अर्थ की गुंजाइश न हो वह समाप्त हो जाती है। इस दृष्टि से कविता लिखना मुझे कठिन लगता है। मौलिक होना मनोरिज्म नहीं है। कविता एक स्फुरण है और कविता का होना ऐसा होना होता है कि उसके और होने की अनेक संभावनाएं उसमें टिमटिमाती रहती हैं।

महावीर अग्रवाल : वस्तु और शिल्प में आप किसे प्रमुखता देते हैं और क्यों ?

विनोद कुमार शुक्ल : यह तो कविता होने के बाद में दिखने वाली बात ज़्यादा है। होने वाली कविता के पहले कुछ मालूम नहीं होता। कविता होते-होते होने की होती है। कविता अधिकतम अभिव्यक्त होने की परिणति है। उसे अधिकतम अभिव्यक्त भी होना है और कविता भी होना है। कविता अभिव्यक्ति की घटना है। इस अभिव्यक्ति की घटना को कोई देखने वाला समझ में नहीं आई कहता है, तो दुख होता है। कवि से कविता का अर्थ नहीं पूछना चाहिए। कविता का अर्थ कविता से पूछना चाहिए। सूक्ष्मता और जटिलता से अधिकतर लोग बिदकते हैं। कहीं-न-कहीं यह बिदकना रचना का विरोध है। प्रमुख तो कविता है। वस्तु और शिल्प अलग-अलग एक-दूसरे से कम या अधिक प्रमुख नहीं है।

महावीर अग्रवाल : कविता में बिम्ब, प्रतीक और मिथकों का उपयोग किस तरह हो?

विनोद कुमार शुक्ल : मुख्य तो कथन और उसका कविता में अभिव्यक्त होना है बिम्ब, प्रतीक आदि औजार की तरह हैं। कभी चिल्लाना प्रतीक है, तो कभी चुपचाप रहना भी प्रतीक है। कविता कम शब्दों में अधिकतम अभिव्यक्त होती है। शब्द को हम अर्थों में खर्च करेंगे तो वह उतना ही जमा होता जाता है,. बल्कि उससे अधिक उत्सर्जित होकर।

महावीर अग्रवाल : कविता की भाषा को लेकर अक्सर प्रश्न खड़ा किया जाता है। आप बताइए कि, कविता की भाषा कैसी होनी चाहिए ?

विनोद कुमार शुक्ल : प्रतीक,. बिम्ब या मिथकों के लिए जो अनुकूलता कविता तय करती है, वही स्थिति भाषा के लिए भी है।

कविता और उपन्यास की भाषा को मैं अलग नहीं मानता। भाषा वही होनी चाहिए जो जीने की भाषा है। वही भाषा जिससे प्रेम प्रकट करते हैं, जिससे मां बेटे से बात करती है, जो हमारे गुस्से और घृणा की भी है। परन्तु रचना के स्तर पर भाषा रचनात्मक हो जाती है। जो एक स्थायी अभिव्यक्ति बनती है। पाठक के सामने कविता जब उपस्थित होती है तो अपनी अभिव्यक्ति की सम्पूर्णता के साथ होती है। परन्तु कविता अपने अभिव्यक्त होने के संकोच के साथ पाठक के सम्मुख होती है। कविता के खुलने का तिलिस्म किस पाठक के पास में कितना है परन्तु प्रत्येक पाठक के पास कुछ-न-कुछ तो जरूर है। अभिव्यक्ति एक कठिन दीवार की आड़ में होती है और हटने के लिए पाठक का इन्तज़ार करती है।

महावीर अग्रवाल : पाठक-वर्ग की आम शिकायत है कि कविताएं दिन-ब-दिन दुरूह होती जा रहीं हैं, इसलिए लोग कविताओं से जुड़ नहीं पा रहें हैं, इस पर आपके क्या विचार हैं ?

विनोद कुमार शुक्ल : कविता पाठक की डिमांड पर नहीं लिखी जाती। और पाठक के अनुसार कविता बदलती नहीं। पाठक को कौन जानता है ? कविता को कविता की तरह ही लिखा जाना चाहिए। जो कविता है उसे अनुवादित कर लिखने की ज़रूरत नहीं होनी चाहिए कि कवि जो कविता लिख सकता है उसे पाठकों के कारण से अनुवादित करे। यदि एक को टीले पर चढ़ने के बाद कुछ दिखता है तो उसे देखने के लिए दूसरों को भी टीले पर चढ़ना चाहिए। कवि ने चार कदम आगे बढ़ाए हैं तो पाठक को भी दो कदम बढ़ाना चाहिए। जहां तक दुरूहता का प्रश्न है पहाड़ और आकाश से कोई नहीं कहता कि मुझे पहाड़ और आकाश समझ में नहीं आते। नदी क्या समझ में आती है ? पेड़ क्या समझ में आता है।

महावीर अग्रवाल : लेखन एक सामाजिक दायित्व है, अत: आप बताइए कि लेखक का क्या कुछ भी निजी नहीं रह जाता ?

विनोद कुमार शुक्ल : किसी भी लेखक से अपनी इच्छाओं के अनुसार अपेक्षा करना कि आप जैसा लिख रहे हैं वैसा नहीं, हम जैसा चाहते हैं वैसा लिखें, ठीक नहीं। और इसे सामाजिक कविता की तरह थोप दिया जाता है। अच्छा तो यह है कि एक किया हुआ काम निजता से हटकर दूसरों को भी अच्छा लगे। निजता ऐसी हो जो सबको अच्छी लगे और सबको अपनी निजता भी लगे।

महावीर अग्रवाल : कवि के अंदर, व्यक्ति और समाज के हितों के बीच का द्वंद्व क्या किसी सार्थक लेखन की भूमिका बनाता है?

विनोद कुमार शुक्ल : व्यक्ति समाज से अलग नहीं है। जो व्यक्ति का पता है वही समाज का भी। फर्क इतना है कि व्यक्ति को उंगली के इशारे से बताया जा सकता है कि वह वहां खड़ा है, परन्तु समाज को उंगुली के इशारे से नहीं बताया जा सकता कि वह समाज है। दूसरों का दुख भी हमारा अनुभव होता है। और हमारा दुख भी हमारा अनुभव होता है, परन्तु मृत्यु का अनुभव यद्यपि दूसरे की मृत्यु से होता है। अपनी मृत्यु से मुझे मृत्यु का क्या अनुभव होगा ? दूसरों का भोगा हुआ भी खुद का भोगा हुआ होता है। समाज का वही रास्ता है जिसमें मेरा रोजमर्रा का जीवन बीतता है। समय के अनुभव का समय प्रत्येक क्षण है।

महावीर अग्रवाल : लेखन के कारण आपको व्यक्तिगत जीवन में कभी किसी संघर्ष का सामना करना पड़ा ? कोई अविस्मरणीय घटना?

विनोद कुमार शुक्ल : ऐसा कुछ खास तो नहीं परन्तु विचारधारा के चलते संगठन की दृष्टि से लेखकों का इकट्ठा होना तो ठीक है। यही समुदाय जब गुटबाजी में बदलता है तो लेखक, सम्पादक, आलोचक अपने व्यवहार में, वक्तव्य में, लेखन में क्रूर और हिंसक भी हो जाते हैं। मैं भी आहत हुआ हूं। कई बार मुझे लगा कि कविता लिखने जैसा काम कोई अपराध करने जैसा है। और कटघरे में खड़ा कर दिया गया है। लोग माफिया की तरह मौका देखकर उग्र हो जाते हैं और दुर्व्यवहार करते हैं। तब अपनी कविता का सहारा अपने लिए उतना न बनता हो लेकिन अपनी कविता के लिए दूसरों की कविता सहारा बनती हैं। हमारे कवि होने का सहारा दूसरे की कविता ही तो है।

महावीर अग्रवाल : क्या रचनाकार के लिए वैचारिक प्रतिबद्धता का होना ज़रूरी मानते हैं ? यदि हां तो क्यों ?

विनोद कुमार शुक्ल : वैचारिक प्रतिबद्धता तो अपने लेखन से तय करने की प्रतिबद्धता है। जैसे मैंने तय किया कि मैं वामपंथी हूं तो हूं। लेकिन कठिनाई तब होती है जब दूसरों की निर्णायक भूमिका बनती है। दूसरों की भूमिका है लेकिन निर्णायक नहीं। दरअसल मेरी वैचारिक प्रतिबद्धता मनुष्यता की प्रतिबद्धता है।

महावीर अग्रवाल : वर्तमान में क्या लेखन के द्वारा सामाजिक-आर्थिक बदलाव संभव है?

विनोद कुमार शुक्ल : अभी तो ऐसी स्थिति नहीं दिखती। राजनीति ने सामाजिकता को नष्ट किया है। साहित्य की समाज में जैसी जो भी असर करने की क्षमता थी वह सामाजिकता के नष्ट होने से नहीं के बराबर है। राजनीति ने साहित्य की कोई परवाह नहीं की क्योंकि साहित्यकार का राजनीति पर प्रभावकारी असर नहीं है। एक कारण साहित्यकारों की आपसी गुटबाजी है। एक-दूसरे को नष्ट करने की कोशिश में इन्होंने साहित्य के पाठकों को भी नष्ट किया है। साहित्य के पाठक बहुत कम हैं। साहित्यकार जहां कहीं भी रहते हैं अपने हाशिए में ही रहते हैं। साहित्य के अलावा उनका अपना सामाजिक व्यवहार भी एक कारण है। इस हाशिए में यदि कोई दरवाज़ा होता है तो इस दरवाज़े को वे खुद बंद कर देते हैं और यह अपेक्षा करते हैं कि जब जनता दरवाज़ा खटखटाना सीख जाएगी तब हम दरवाज़ा खोलेंगे।

महावीर अग्रवाल : आप किस कवि से अधिक प्रभावित हैं, या रहे हैं ? उनकी कुछ उल्लेखनीय रचनाएं, जिनसे आपके लेखन को गति या दिशा मिली?

विनोद कुमार शुक्ल : प्रभावित होने का तो एक समग्र कारण बनता है। इस समग्रता में सभी कवि हैं। पहले के और अभी के। एक लम्बी परम्परा है। और यह समृद्ध परम्परा विरासत की है। अपनी मौलिकता को पाने में बहुत कठिनाइयां हैं। इसमें रचनाकार कान बंद करने के बाद भी सुनता है। बल्कि बिना कान के भी सुनता है। अग्रजों की अनुगूंज के बिना हम अपनी अनुगूंज नहीं बना सकते। कविता लिखने के ठीक शुरू में 50 साल पहले मुक्तिबोध जी और मुक्तिबोध जी की कविता मुझे एक साथ मिले। कवि कविता के साथ करीब-करीब अजनबी कविता के संसार में मुझे मुक्तिबोध की समीपता से कविता का एक बड़ा संसार मिला। उनके साथ पहले शमशेर जी और श्रीकांत वर्मा के रचना संसार से मेरा आत्मीय परिचय हुआ।

महावीर अग्रवाल : कविता भी एक यात्रा है। आप अपने समकालीनों में किन कवियों को अपने सहयात्री पाते हैं ? अपनी पसंद की कुछ कविताओं और उनके कवियों के बारे में बताइए।

विनोद कुमार शुक्ल : आने वाले 50 वर्षों में मुक्तिबोध से बड़ा कवि मुझे केवल मुक्तिबोध दिखाई देते हैं। और बीते पचास वर्षों में भी केवल मुक्तिबोध। साहित्य का मेरा कुटुम्ब, परिवार मुक्तिबोध से बना। मुक्तिबोध के जो परिचित और मित्र थे वह मेरा ही परिवार हुआ। हरिशंकर परसाई से भी जो परिचय हुआ वह मुक्तिबोध जी के माध्यम से। 1956 से 1962

तक जबलपुर के कृषि महाविद्यालय में पढ़ते हुए परसाई जी से मेरा बार-बार मिलना-जुलना होता रहा, परसाई जी से मिलना मेरी नींव का मजबूत होना था कि मैं खड़ा हो पाया। मैंने उनको हमेशा अपने को उनके पीछे चलने वाला समझा। परन्तु उन्होंने हमेशा अपने साथ कर लिया। उनके पते से मेरे घर की चिट्ठियां आती थीं। कविता के संसार में प्रवेश करते हुए कुछ मोड़ थे। एक मोड़ तो श्रीकांत वर्मा के कारण था। 'कृति' में कई वार मेरी कविताएं प्रकाशित हुईं। दूसरा मोड़ अशोक बाजपेई की 'पहचान सीरीज़' में प्रकाशित कविताएं थीं। अशोक बाजपेई का नाम पहली बार मैंने मुक्तिबोध जी से सुना तो दूसरी बार हरिशंकर परसाई से। इस प्रकार अशोक बाजपेई से सीधे परिचय होने के पहले ही अपनेपन का परिचय बन गया था।

महावीर अग्रवाल : कविता के विकास और सार्थक फैलाव में रेडियो, दूरदर्शन और कवि सम्मेलनों पर आपके क्या विचार हैं?

विनोद कुमार शुक्ल : मीडिया की ताकत के बारे में इंकार नहीं किया जा सकता। यह भी कि मीडिया की ताकत का इस्तेमाल बहुत गैरजिम्मेदारी से किया जा रहा है। दरअसल मीडिया मनोरंजन के हल्के-फुल्के कार्यक्रमों के आधीन हो चुका है। इससे कोई मुक्ति दिखाई नहीं देती। जिस तरह का और जैसा बाजार है उसमें मनोरंजन सबसे लाभकारी धंधा है। मीडिया पर व्यावसायिक दबाव उसे अच्छा होने से रोकता है। मनोरंजन जितना घटिया होता है लाभ उतना ही अधिक होता है। श्रेष्ठ और उत्कृष्ट साहित्य मीडिया में कब लोगों के लिए ज़रूरत के रूप में सामने आएगा, यह कहना मुश्किल है।

महावीर अग्रवाल : कविता पोस्टर्स को आप किस रूप में देखते हैं ? क्या, कविता को लोकप्रिय बनाने और चेतना के विकास में इनकी कोई सार्थक भूमिका बन सकती है ?

विनोद कुमार शुक्ल : पोस्टर के नाम से जो अधिकांश कविता पोस्टर मैंने देखें हैं, उसमें कविताएं जो नारे की तरह हैं शामिल की गई हैं। कविता के पोस्टर बनाए जाते हैं तो उनकी जगह क्या होगी, यह सोचने की बात है। अपने आसपास से कुछ देर के लिए अलग होकर किसी तरह कविता के पास हो सकें तो अच्छा है।

महावीर अग्रवाल : कविता के अलावा, आप और किस विधा में लिखते हैं? क्या, अन्य विधा में लेखन करने का भी कोई कारण है?

विनोद कुमार शुक्ल : कविता के अलावा मैंने कहानी और उपन्यास लिखें हैं। या यूं कहिए कि किसी तरह लिख लिए हैं।

महावीर अग्रवाल : और अंत में, कविता की आलोचना और उसके आलोचकों के विषय में आपकी क्या राय है ?

विनोद कुमार शुक्ल : रचना-प्रक्रिया के दौरान रचनाकार स्वयं अपनी रचना का पाठक होता है। केवल पाठक ही नहीं क्रूर आलोचक भी। यह रचना और आलोचना का पहला अन्तर्संबंध हैं। हमारे समय में आलोचकों द्वारा और पाठकों द्वारा भी बिना पढ़ी पुस्तकों की संख्या बहुत अधिक है। जब लेखक निशाने में होता है तब कुछ पाठकों की भी हत्या होती है। पाठक के साथ कुछ साहित्य भी मरता है। यदि एक भी अच्छी पुस्तक छप रही है तो यह मानना चाहिए कि पाठक लेखक विरोधी नहीं है और समाज भी।

ooo

सम्पादक 'सापेक्ष'
ए० 14 आदर्श नगर
दुर्ग (छतीसगढ़) 491-003

हिरंना समझत बूझत पग धरना

❑ *आदर्श*

जीवन बहता पानी। कभी शान्त, कभी वेगवान, कभी चट्टानों से टकराता, उफनता, शोर मचाता, तो कभी झरना बन झर-झर बहता। रास्तों के खुले आमन्त्रण, कहीं पर्वत, कहीं मैदान, तो कहीं दूर-दूरऽऽऽर तक व्याप्त रेगिस्तान।

निरन्तर बदलते रास्तों और समय के खट्टे-मीठे जीते अनुभव लिए हर इन्सान अपने आप में एक उपन्यास है, बस खोलने-भर की देर है। सबके अपने-अपने सबक जो उन्होंने जिन्दगी की किताब से पढ़े। जो संवेदनशील हैं, समझते-महसूसते हैं, शब्दों से खेलना जानते हैं, वह उन्हें आखरों के मोतियों में पिरो देते हैं। अब यह कर पाने का सुकून दूसरों को देने का, बताने का अगर इन्सान में न होता तब कहां ऋषि-मुनि वेद-शास्त्र लिख पाते, और न ही आदिकाल से चली आ रही किस्सागोई होती। कथा, उपन्यास, कविता, नाटक आदि समस्त विधाएं जन्म ही न ले पातीं।

अपन को बार-बार यही लगता कि जीवन से जुड़े सारे-के-सारे प्रसंग, किसी-न-किसी शक्ल में हमने कागज़ पर आन उतारे हैं, कि अब कुछ बचा ही नहीं है, फिर भी रह जाती है कोई-न-कोई खुरचन, बस किसी के कुरेदने भर की देर है।

हाल ही में अपने एक दोस्त ने सुझाया, अमा डाक्टरी की सरकारी नौकरी में गांव-गांव भटका किए हो, क्या सदा अकेले डाक्टर को ही साथ रखे रहे या भीतर ओर कोई ज़िन्दा-जागता दीद खोले रहता रहा ? गांव की नारियों को करीब से देखा होगा, बूझा होगा, जाना होगा, क्या कुछ अलग-सा नहीं लगा, जिसने तुम्हारे भीतर बैठे हुए को झिंझोड़ा हो, दहलाया हो, कौंचा हो, थोड़ा कभी सहलाया हो ?

सुनते ही चुपा गया और अपने पांव घर चला आया। कोफ्त हुई अपने पर। दिल में आया कि इस भीतर बैठे को पीट डालूं। लो भला, दूसरा इसे जगा रहा है। इस मामले में इसे खुद ही जागे रहना चाहिए था, मुझे उकसा कुछ लिखवाना चाहिए था। अब इसे पीटता हूं तो चोट बाहर मुझे लगती है, यह चूंकि भीतर है अतः सुरक्षित रहेगा। अब कह रहा है मुझ से कि कितने-कितने चरित्र है मेरे आगे, इतने करीबी, इतने अपने, इतने अनछुए कि उन पर कलम उठा ही लेनी चाहिए, अभी तुरन्त।

सबसे पहले मुखर हो उभरा पार्वती का चेहरा। देने वाले का क्या हिसाब-किताब है, अपनी समझ में कभी नहीं आया। अब अगर यह पापों का हिसाब-किताब है तो भोगते तो इन्सान खुद को पाता है लेकिन किए कब थे, इसका बायो-डाटा स्क्रीन पर नज़र आ जाए तो दुख में राहत मिले। इसके बरबस भाग्य और ऊपर वाले की इच्छा से संतोष न कर जो इन्सान इसके विरोध में सीना तान उठ खड़ा हुआ, उसने विजय पाई, ऊपर वाले ने उसका साथ भी दूर तक दिया। महामारियों पर विजय से लेकर आज अंग प्रत्यारोपण तक ईश्वर यत्नशील मनुष्य का साथ दे ही रहा है।

पार्वती का नाम सुनते ही हमारे सामने सुन्दर, स्वस्थ, मुस्कुराती, हिमालय पर्वत की उतुंग शिलाओं पर विराजमान भगवान भोले शंकर की बगल में आर्शीवाद मुद्रा में बैठी नारी आकृति आन उभरती है। लेकिन यह पार्वती झुकी कमर, कृश, कृष्ण वर्णी 75 वर्षीया वह वृद्धा है जो मेरी डिस्पैन्सरी में पार्ट टाइम स्वीपर थी।

पहली बार जब मैंने उस डिस्पैन्सरी की कुर्सी सम्भाली तो उसे एक बैंच पर चुपचाप बैठे पाया। सोचा कोई मरीज होगी, जो दिखाने आई है।

लेकिन कम्पाउन्डर दिनेश ने परिचय करवाया--'सर! यह पी. टी. एस. है पार्वती। उस वृद्धा ने उठ कर दोनों हाथ जोड़ कर सिर झुकाया। हतप्रभ रह गया मैं। भला यह कैसे काम कर पाती होगी ?

समय लगा। धीरे-धीरे, देखते-देखते मैं पार्वती के काम का अभ्यस्त हो पाया। वह अपना काम ऐसे करती मानो कोई स्लोमोशन पिक्चर चल रही हो आपकी आंखों के सामने। अपना काम वह दिल और हाथों से करती। लगभग एक किलोमीटर दूर से वह आती। सर्दी, गर्मी, बरसात कैसा भी मौसम हो, पार्वती हमारे डिस्पैन्सरी पहुंचने तक सारी सफाई निबटाकर बर्तन धो-चमका रही होती। बिना कहे ही वह प्लास्टिक की कुर्सियां तक धो डालती। पीने के लिए वह पानी पंचायत में लगे हैंडपंप से लेकर आती। इतने काम के एवज में सरकार द्वारा उसे वेतन मिलता मात्र 200 रु.। कितने अवसरों पर हमारे इस अल्प वेतन के लिए आवाज़ उठाते रहने पर भी कोई न सुनता।

जब हम फुर्सत में बैठते तो एक-दूसरे के घर-बार का पूछते। पार्वती के तीन बेटे थे। उनमें से दो अच्छी नौकरियों पर थे, अपने-अपने परिवारों में ही व्यस्त और मस्त। मां की सुध लेने वाला कोई नहीं। तीसरा बेटा अविवाहित था और उसी के साथ रहता था। उसे मां से इतना लगाव था कि अच्छी भली आर्मी डिपो में चौकीदार की स्थाई नौकरी पठानकोट से छोड़ वह घर वापिस लौट आया था कि घर में ज़मीन के छोटे से टुकड़े व कच्चे घर के मोह में लिथड़ी मां अकेली कैसे रहेगी। यहां दिहाड़ी मजदूरी करके वह अपना व अपनी मां का पेट पाले जा रहा था।

घनघोर दरिद्रता के होते भी पार्वती में मांगने की नहीं, देने की भावना थी। कभी कहीं से वह मेरे लिए ताजा स्थानीय कोई साग चुन लाती, तो कभी कोई मौसमी फल या सब्जी-तरकारी। एक दिन वह एक थैली में मक्की का ताजा आटा ही ले आई --'डाक्टर जी! यह घराट का मीठा आटा है।' लाख मना करो, लेकिन वह अपनी धुन की पक्की थी, कुछ-न-कुछ ले ही आती। थोड़ी ज़मीन थी उसकी जहां वह अपने बेटे के साथ खटती। पेट भरने लायक अन्न उसे जिस-तिस तरह मिल ही जाता।

उस दिन पार्वती बेहद चुप और उदास थी। अपना काम निपटा वह खोई-खोई बैंच पर बैठी रही।

'पार्वती! क्या बात है ? तबीयत ठीक नहीं है क्या ?

'तबीयत क्या ठीक, क्या खराब डाक्टर साहब। बस सांसों का हेर-फेर है, आई तो आई नहीं तो छुट्टी।' फिर थोड़ा रुक कर कहा--'डॉक्टर साहब! मांगते शर्म तो लगती है। थोड़े पैसों की ज़रूरत आन पड़ी है।'

'कोई बात नहीं। कितने चाहिए ।'

'चाहिए तो पता नहीं कितने । आपसे तो उतने ही मागूंगी जितने चुकता हो जाएं। बस हजार-एक रुपये दे दो। जब मेरे निकले तो उसमें से आप काट लेना।'

उसके वेतन की ग्रांट भी नियमित नहीं थी। वर्ष में एक या दो बार उसके पैसे एक साथ निकल पाते थे। बीच में ज़रूरत पड़ने पर हम उसे अपनी जेब से देते रहते।

पैसे लेकर वह फिर भी वैसे ही बैठी रही। पहाड़ी पर बनी इस डिस्पैन्सरी से बाहर का दृश्य बड़ा मनोहारी दिखता। दूर-दूर तक फैली पर्वतमालाएं, खेत-ही-खेत नन्हे-नन्हे। मध्य से होकर जाती सर्पिल पगडंडी। गर्मी के इन दिनों में पंखे की कोई ज़रूरत न पड़ती। बरसात का मौसम उतार पर था। मक्की के पौधे तेजी से बड़े हो चले थे। उनमें से झांकते भुट्टों के काले-काले बाल यूं लगते जैसे मां के आंचल में छिपे नन्हे-नन्हे शिशु किलक रहे हों। बरामदे के ताखचों पर बैठे कबूतरों की फड़फड़ाहट और गुटर-गूंऽ सन्नाटे को तोड़ रही थी। मैं अखबार पढ़ने में रमा था। दिनेश आज छुट्टी पर था। अखबार से निगाह उचटी तो देखा चारों ओर के सुहावने और मस्त वातावरण से बेखबर पार्वती वैसी-की-वैसी ही बैठी थी। पानी की बोतल से जैसे ही मैंने अपना गिलास भरा, तो उसकी तन्द्रा टूटी। लम्बा सांस छोड़ते वह बोली--'जिन्दगी से हासिल किछ नी हुआ डाक्टर जी। बड़ी ही गरीबी देखी, भूख सही, मेहनत-मजूरी कर इस पेट की आग बुझाई, पर हाथ कभी नी फैलाया। मारो-मार....मार-ही-मार। घरवाला मिला। सोचा अच्छे दिन आयेंगे। पर खुट्टी किस्मत। वो भी शराबी, मारता ही मारता। हथेली खाली-की-खाली, कुछ नी धरता। कुछ सालों में तीन न्याणे। बिना पैसे कीड़े-मकौड़े सी जिन्दगी। फिर वो दूसरी ले आया। तीन बच्चों के साथ मुझे यहां बेसहारा छोड़ वो उसके साथ

दूसरे गांव बस गया। सारी ज़मीन-जायदाद उसने बेच-बेच खाई। बस यहां यह छोटा-सा टुकड़ा ज़मीन, कच्चा कोठू, और तीन बच्चों के साथ मैं और हमारी भूख। कैसे-कैसे दिन काटे डाक्टर जी। मैं और मेरा भगवान ही जाने। कल खबर लगी वो मर गया। उसी के........मुंह की रुलाई पल्लू में दाब वह अस्थि-काया हिचकोले पर हिचकोले खाती चली गई।

'लेकिन पार्वती। तुम क्यों करोगी सब कुछ ? कैसे करोगी ? तुम्हें तो वह बरसों पहले छोड़ गया।'

'वहां कुछ नहीं है डाक्टर जी। जब उसका पैसा मुक गया तो वह औरत भी भाग गई। एक तो अपना जी नी मानता। मैं यूं ही बैठी रहूं तो दुनियां मुझे छोड़ेगी ? जब से मरा है बुलावे-पे-बुलावे आई जा रहे हैं। जाना तो पड़ेगा।'

'लेकिन इतना खर्च ?'

'मांग-तांग करूंगी सब कुछ। हमारे तो 'कर्म' की रीत भी इतनी लम्बी है कि बस पूछोई मत। अच्छा....चलती हूं। जी भरा था, बात कर हल्की हो ली। पीछे मेरी बहन की लड़की काम करती रहेगी। फिकर नी करना।'

पार्वती फिर पूरा एक महीने तक नहीं आई। जो लड़की काम पर आती उसी से उसकी खबरें मिलती। इन दु:खद अवसरों पर आर्यसमाजी विचारधारा के रहते हमारे यहां विशेष आडम्बर नहीं होते थे अत: मैं इन सब से अनभिज्ञ भी था। मुझे उस लड़की व अपने कम्पाउंडर से पता चला कि पार्वती एक लम्बी महंगी प्रक्रिया में फंस ही गई है।

मृत्यु के दस दिन बाद तक रोज जो ब्राह्मण नदी किनारे उसके लड़के से पूजा-पाठ व पानी आदि दिलवाएगा वह कम-से-कम 100 रु. रोज तो लेगा ही। देहान्त के आठ दिन बाद सभी रिश्तेदारों को खाना खिलाया गया। दसवें दिन सभी को 'कोड़ी रुट्टी' के लिए बुलाया गया है जिसमें देसी घी का छौंक नहीं लगता। तेहरवें दिन 'कर्म' होता है जिसमें दान के रूप में चावल, आटा, तेल, घी, फल और सब्जियों के अतिरिक्त एक 'सेज' दान में दी जाती है जिसमें पलंग, बिस्तर, छाता, रेडियो, रसोई के तमाम बर्तन, घड़ी आदि सारा घरेलू सामान तथा स्वर्णाभूषण तक पंडितों द्वारा लिखवाई सूची में होता है। पंडितों की स्थापना यह है कि मृत आत्मा को स्वर्ग में यह सभी चाहिए होता है, और चूंकि ब्राह्मण पृथ्वी पर ईश्वर का प्रतिनिधि है, अत: उसको दिया गया सामान सीधा स्वर्ग गमन कर गई आत्मा तक पहुंचता है। आत्मा को कोई कष्ट न पहुंचे इस भय से रिश्तेदार वह सब कुछ करते जाते हैं जो उनकी सामर्थ्य से बाहर होता है। इसमें लोक-लाज और दिखावा भी एक कारण रहता ही है। यह सब सामान 'गुजरातिया' ले जाता है जिसका काम मृत्यु के ग्यारवें दिन से आरम्भ होकर पूरे वर्ष-भर चलता है। अब मृत्यु के 15वें दिन अर्द्ध मासिक आ जाता है जिसमें फिर 'पिण्ड' आदि देने की महंगी प्रक्रिया से गुज़रना पड़ता है। पूरे वर्ष-भर में 16 बार यह गुजरातिया कुछ-न-कुछ करवाता रहता है। प्रत्येक माह 'मासिक' होता है। मृतक के परिवार वाले वर्ष भर दिन में एक समय भोजन करते हैं।

पार्वती की क्षीण काया इतना कुछ झेल पाने में समर्थ कहां थी। पहला महीना बीतते उसने खटिया पकड़ ली। दवाइयां हम उस तक भिजवाते रहे। एक दिन लाठी पकड़ वह जब डिस्पैंसरी आई तो वह सिर्फ एक चलती लाश थी। कर्जे में वह और उसका बेटा गले-गले तक डूब चुके थे। मेरा विद्रोही मन खुली आंखों बेबस बना सब देखे जा रहा था, शब्द उबल-उबल मेरी जुबान तक आते, लेकिन बेबसी! कहीं उसकी भावनाएं मैं आहत न कर बैठूं। पार्वती इतनी नादान न थी, मेरी विचारधारा से वह थोड़ा बहुत परिचित थी। लेकिन यह उसका अपना समाज था जिसमें वह जी रही थी, अपने हालात और संस्कारों के साथ।

उसका बेटा जीतू इस बीच जब भी आता, मेरा लम्बा जोशीला विद्रोही भाषण सुनता। नज़रें नीची रखे वह अन्त में यही कहता--'डाक्टर जी। बातें तो आपकी सारी ठीक हैं, लेकिन मैं कुछ नी कर सकता। मुझे तो जैसे मां कहेगी वैसा ही करना होगा। मेरा भगवान तो मेरी मां ही है डाक्टर जी।'

अब पार्वती हर माह 'मासिक' के लिए बेटे के साथ पति के गांव जाती। वर्ष-भर एक समय भोजन करते, बरसी पर पूरे गांव को भोज दिया उसने। पण्डित ने फिर एक लम्बी सूची 'सेज' के सामान की उन्हें पकड़ा दी। सब कुछ किया उसने, झेला उसने। इतना सब करते-करते उसे टूटना ही था। इस बार पार्वती ने जो खटिया पकड़ी फिर वह उससे छूट न पाई। मेरा कहना मान जीतू उसे अच्छे डाक्टरों के पास शहर भी ले गया, अस्पताल में भर्ती भी उसे रखा। लेकिन यह टूटन गहरी थी, दैहिक व मानसिक। जीवन-ज्योति धीरे-धीरे मद्धम होती जा रही थी। आत्मबल के सहारे वह खुद को यहां तक खींच लाई थी। जीतू के विवाह का सपना उसकी सूखी आंखों में कांप-कांप जाता। यदि कोई उसे समझ पाया तो यही जीतू। लेकिन अब। दबे-पांव आती आहट वह महसूस रही थी।

उस दिन जैसे ही वह डिस्पैन्सरी पहुंचा, सब गांव की दुकानें बन्द थीं। जीतू डिस्पैन्सरी की सीढ़ी पर बैठा डुसक रहा था। मुझे देख बुक्का फाड़ रोने लगा......'मां मर गई मेरीऽऽऽऽऽऽ। डाक्टर जीऽऽऽऽ मेरी मां मर गईऽऽऽऽऽऽ। मैं अकेलाऽऽऽऽ।

उसके पास वही ज़मीन पर बैठे उसे सांत्वना देने के अलावा मैं कुछ कर नहीं पा रहा था। उसका कांधा थपथपाता रहा देर तक। मां के क्रिया-कर्म के लिए उसके पास फूटी कौड़ी तक न होगी। बड़ा खुद्दार था वह। मांगने के लिए वह कभी मुंह नहीं खोल सकता था।

देर तक कुछ सोचता रहा। कुछ तो करना ही है। अपनी जेब का सब कुछ उसकी जेब में डालते हुए कहा--'जीतू! मां का हश्र, इस झूठे दिखावे के चक्कर में तुम देख ही चुके हो। पार्वती को तो मैं रोक नहीं पाया। लेकिन तुम अब वही करोगे जैसा मैं कहूंगा।'

जीतू की हिचकियां और झुकी पलकें मुझे आश्वस्त करने के लिए पर्याप्त थीं।

गांव का दूसरा नारी चरित्र एक अल्हड़ किशोरी सीमा का मेरे सामने आन उभरता है।

ठीक दस साल बाद इस गांव मंजर में ट्रांसफर हुआ था। शहर से यहां तक का एक घण्टे का सफर मैटाडोर से है। फिर एक किलोमीटर भीतर इस गांव तक पैदल यात्रा। इन दस वर्षों में बदलाव आया है तो इतना-भर कि पहले यहां तक चन्द बसें ही आती थीं, अब हर आधे घन्टे बाद मैटाडोर सेवा है। पहले मुख्य सड़क पर कस्बेनुमा सूरत थी, जहां कुछ ढाबे थे, देसी शराब का ठेका था, वहीं अब अच्छा खासा बाज़ार बन गया है। लोगों की क्रय शक्ति में जादुई परिवर्तन आया है। यहां से गांव तक खेतों के बीच से सर्पिल पथरीली पगडण्डी थी, उसकी जगह अब अच्छी पक्की सड़क ने ले ली है। इस सड़क के साथ-साथ खेतों के मध्य पक्के मकान दिखाई देने लगे हैं। कुछ दुकानें भी बनी हैं। गांव के लड़कों ने भले ही शिक्षा क्षेत्र में उन्नति कम की हो, उनके पास धड़धड़ाती मोटरसाइकिलें आ गई हैं। मेरी डिस्पैन्सरी के आधे बीच सफर में एक मिडिल स्कूल था, जो अब हाईस्कूल में बदल गया है।

पहले मेरी डिस्पैन्सरी के सामने एक प्राइमरी स्कूल भी होता था। जब अपन नए-नए यहां आए थे तो उन चार अध्यापिकाओं को मैंने सर्दियों की गुनगुनी धूप में खट्टे किम्ब में धूनी लगा चटखारे ले-लेकर खाते पाया था। पहला-पहला दिन था, मन मसोसे रह गया। लेकिन अगले ही दिन बाहर निकल अपन ने उन सब से मित्रता कर ली थी, यह कहते हुए--'भई। खट्टे किम्ब अकेले आप को ही खाने नहीं दूंगा।' फिर तो मौज बंध गई थी, रोज कभी भुनी छल्ली, कभी किम्ब तो कभी पुलाव की दावत उड़ती।

डिस्पैन्सरी बिल्डिंग किराए के मकान में उसी जगह है। बस कच्ची छत का स्थान टीन की छत ने ले लिया है। अलमारियों, मेज-कुर्सियों की संख्या उतनी ही है। बैठक बदल गई है। पहले से सफाई और रख-रखाव में सुधार हुआ है। सफाई वाली बुढ़िया पी. टी. एस भी नहीं बदली है। बिल्कुल वैसी ही है कर्मठ। अब वह ८0 को छू रही है। पति का देहान्त हो गया है। बाल-बच्चे अलग हो गए हैं। डिस्पैन्सरी से सटे अपने कमरे में अकेली रहती है। मस्त! थोड़ा ऊंचा सुनती है। सुबह-सुबह नियमित रूप से डिस्पैन्सरी साफ कर पानी का घड़ा टिका जाती है। शायद ही कभी उसे मैंने खाली बैठे पाया है। हर दम घरेलू कामों में व्यस्त रहेगी, जब फुर्सत पाएगी तो रंगीन सुन्दर 'खीड़े' बैठने के लिए प्रयुक्त खजूर के पत्तों से बुने आसन बनाने बैठ जाएगी। रंग बाजार से ले आती है। उसके निर्मित सुन्दर खीड़ों की बहुत मांग है। बनते ही खरीदार उन्हें हाथों-हाथ ले जाते हैं। पति के जीवित रहते दोनों मिल कर घड़े बनाते थे। किसी की निन्दा-चुगली से दूर वह शान्त मन अपने ही में मगन रहती है। कभी किसी से लड़ते-झगड़ते उसे मैंने नहीं पाया। इसी कर्मठता के चलते मैंने उसे बीमार पड़ते न पहले देखा था न अब। झूठे से भी मुझसे वह किसी दवाई की फरमाइश नहीं करती।

यूं ही डिस्पैन्सरी में जब खाली बैठा था तभी दस बरस पहले की घटना स्मृति में कौंध गई। आवागमन कठिन था तब अतः रोगियों की संख्या अधिक हुआ करती। बैंच पर रोगी बैठे थे। मैं एक-एक कर उन्हें देखता जाता और कम्पाउन्डर को निर्देश देता जाता वो साथ

लगे कमरे से दवाइयां दिए जा रहा था। जब उस लड़की का नम्बर आया तो वह सकुचा कर बोली--'पहले आप औरों को देख लें, मैं बाद.......।' बाद में अवकाश होने पर वह धीरे से उठ समीप रखे स्टूल पर आन बैठी। चटख रंगों के कपड़े पहने उस लड़की का नाम सीमा था। यौवन दहलीज पर पांव रखती वह अच्छे स्वास्थ्य की ग्रामीण युवती थी। पूछने पर उसने बड़े ही संकोच से मासिक न आने का ज़िक्र किया। पर्ची लेकर वह दवाई लेने चली गई।

ठीक एक सप्ताह बाद वह पुनः मेरे सामने। इस बार पहले से अधिक सहज। पूछने पर बतलाया कि हमारी दवाई से उसे कुछ लाभ नहीं हुआ है।

तब मूत्र परीक्षण के आधुनिक सरल उपाय उपलब्ध नहीं थे। सीमा को एक पर्ची पर इन्जैकशन का नाम लिख दिया जिसे वह तुरन्त बाज़ार जाकर ले आई। कम्पाउन्डर रमेश से वह इन्जैक्शन लगवाकर चली गई। हमने उसे एक सप्ताह बाद आने के लिए कहा।

एक सप्ताह तो हमने यूं ही समय दिया था। हमें आशा थी कि मासिक में यदि सामान्य रुकावट होगी तो दूर हो जाएगी। सब ठीक हो जाने पर सीमा आएगी ही नहीं।

ठीक एक सप्ताह बीतते न बीतते सीमा पुनः उपस्थित। दो-तीन रोगियों के जाने की वह प्रतीक्षा करती रही, फिर कुछ दबंग अन्दाज़ में वह मेरे साथ रखे स्टूल पर आन विराजी।

'आपकी डाक्टरी बेकार है डाक्टर जी। कोई दवाई असर ही नहीं करती।'

'क्यों क्या कपड़े नहीं आए ?'

'नहीं, बिल्कुल नहीं।'

'फिर तुम्हें अस्पताल लेडी डाक्टर को शहर जाकर दिखाना होगा।' संकोचवश सब कुछ जानते, निश्चय पर पहुंच मैं उसे कुछ और नहीं कहना चाहता था कि उसका प्रैग्नैन्सी टैस्ट पाजिटिव आया है।

'अब इतनी दूर कौन जाएगा, दवाई तो मैं यही से लूंगी। कुछ घबराई थरथराती आवाज़ में उसने कहा।'

जब वह जिद पर ही अड़ गई तब मैंने स्वयम् को भीतर से दृढ़ किया, पूछा-

'अच्छा, एक बात तो बतलाओ सीमा। कहीं कुछ ऐसा-वैसा तो नहीं हुआ है। यह चक्कर क़ुछ दूसरा है, तभी इन्जैक्शन से भी कपड़े नहीं आई तुम।'

थोड़ी देर सिर झुकाए चुप रही सीमा। फिर अपनी अंगुली पे चुन्नी लपेटते थोड़ी हिम्मत से कहा--'मुझे क्या पता ? जंगल में डंगर चराते वक़्त अपने-आप कुछ वैसा-कैसा हो गया हो तो क्या पता लगता है ?'

उसके थोड़ा आश्वस्त हो चले जाने पर पता यह चला कि वह मातृ विहीना गांव के एक रिटायर सूबेदार साहब की अल्हड़ लाडली स्वच्छन्द स्वभाव की कन्या है। सूबेदार साहब को बुलावा भेजा। सारी बात समझाई। एक बार तो उनके होश उड़ गए, फिर इस बात को गुप्त रखने के लिए वह गिड़गिड़ाने लगे। कुछ समय लगा बातों-ही-बातों में मैंने उन्हें सहज किया। यह भी समझाया कि घर जाकर शोर मचा कर या मारपीट से कोई लाभ नहीं होगा। उन्हें भविष्य का मार्ग खोजना होगा, मौके की नज़ाकत को समझते हुए।

मौका ठीक सम्भाला उन्होंने। ठीक एक माह बाद मुख्य सड़क पर शहर जाने के लिए जब मैं बस के इन्तजार में खड़ा था, अचानक एक दृश्य देख प्रसन्नता हुई। लाल जोड़े में लिपटी, बांहों में सुन्दर चूड़ा पहने सीमा सड़क किनारे अपने दहेजू टीन के बड़े बक्से पर बैठी थी--सिमटी शर्मीली सी। उससे कुछ ही दूरी पर दूल्हे वाले डोगरी साफे से सजा, कान्धे पर तलवार टिकाए उसका सुन्दर सजीला दूल्हा रिश्ते-नातेदारों से घिरा सिगरेट के कश लगा रहा था।

दूर से वह बस पहले आती दिखी जिस पर उन सब ने सवार होना था। घुमावदार मोड़ से होती हुई बस सामने आन खड़ी हुई। दूर तक जाती सड़क उनकी यात्रा के लिए बिछ-बिछ जाती थी। किसी गांव में उनका सुखी जीवन उन्हें टेर रहा था। हवा तेजी से बहने लगी थी और वृक्ष मस्ती में, झूम-झूम जाते थे, मानो नाचना व गाना चाहते हों।

ग्रामीण नारी पात्रों के इसी क्रम में जिब्ब गांव की सुच्ची मौसी को मैं कहां छोड़ दूं ? इस घटना को मैं अक्सर अपने मित्रों को सुनाता हूं।

लोगों को कितना ही समझाओ लेकिन आदतें भला कहां छूटतीं हैं। भला आज कल के युग में जेवर घर में दबाए रखना कहां की बुद्धिमानी हैं? अपन तो एक खास रुझान साफ देख पा रहे हैं। वह यह कि अब घरों में चोरी करने आए चोरों की रुचि महंगे-से-महंगे सामान में नहीं है। इस मामले में वह किसी बड़े-से-बड़े वीतरागी से कहीं भी कम नहीं हैं। उन्हें तो तलाश रहती है घर में रखे नगद भगवान की या स्वर्णाभूषणों की।

जहां तक अपनी बात है, अपन ने बरसों पहले एक छोटा-सा बैंक लाकर अपनी नन्ही-सी पोटली के लिए रख छोड़ा था और लम्बी तान लेट गए थे बेफिक्री से। अब तो आगे-पीछे चोरी की घटनाए सुन मन होता है घर के बाहर एक बोर्ड लटका, दूं इस घर से गहनों व नगदी की उम्मीद न रखें।

एक शायर साहब इसी से मिलती-जुलती बात पहले ही फर्मा चुके है--"जब कभी कोई चोर घुस आता है मेरे घर में, कसम से बड़ी शर्मिन्दगी महसूस होती है।'

अब हुआ यूं कि जिब्ब गांव में सुबह-सुबह भूचाल-सा आ गया। पता चला रात चोरों ने गांव की मशहूर सुच्ची मौसी के घर हाथ साफ कर लिए हैं। सुच्ची मौसी उनका नाम ही

इस लिए पड़ गया था कि उन्हें खुद को पवित्र समझने की सनक थी। दूसरों से बची-बची फिरती थी और गलती से गर कोई छू जाए तो तुरन्त बावली पर जाकर नहा आती थी। चाहे भरी सर्दियों में दिन में बीस बार ही क्यों न नहाना पड़े। सारा दिन पूजा-पाठ में लगी रहती और पण्डित जी से व्रत-त्योहारों के विषय में पूछती रहती।

छोटा कद, चाल में फुर्ती, जुबां में तेजी, झक सफेद वेश भूषा और पतली-सी सुच्ची मौसी की अपनी अलग ही पहचान थी। घर गांव में उनकी धमक थी।

एक बार सुच्ची मौसी को कुत्ते ने काट लिया। जहां उसके दांत गड़े वहां सेप्टिक हो गया। बहुत दिनों तक तो किसी को बतलाया नहीं। जब बुखार से तड़पने लगी तो मुझे बुलवा भेजा। जाकर देखा तो सारा नज़ारा समझ आया। बहुएं भी डर कर उनके पास नहीं आ रही थीं। मुझे आया देख आवाज़ में शहद घोल वह अपनी व्यथा बतलाने लगी। लेकिन अब तो मेरी बारी थी, अगली-पिछली सारी कसर निकाल लेना चाहता था। कहा--

''मौसी आपका इलाज तो हो सकता है लेकिन मुश्किल एक है......''

'वह क्या बेटा ?' चश्मे से झांकती आखों को फैला कर पूछा उन्होंने।

''मौसी आपको लगने चाहिए पांच इन्जैक्शन। रोज का एक। लेकिन.....''

'लेकिन क्या बेटा। पैसे की फिकर न कर। जितना तू कहेगा उतना दूंगी। मुझे चलने फिरने लायक बना दे रे बेटा, मन्दिर जाने से भी रह गई मैं तोऽऽऽऽ।'

'ना मौसी पैसे की बात नहीं है। इन्जैक्शन लगाने के लिए आप को छूना पड़ेगा......। इससे आपको भी पाप लगेगा और मुझे भी।'

मैं जानता था हमारी ओर घूँघट किए उनकी दोनों बहुएं मन्द-मन्द मुस्कुरा रही हैं।

'न....न बेटा। मुझे-तुझे कोई पाप नहीं लगेगा। तेरी बात समझ गई मैं। भला छूने से कोई पाप-वाप ना लगे। मैं ही गलत थी। अब सब समझ आ गया मुझे। इत्ती बेवकूफ थोड़े ही है तेरी मौसी। भगवान ने यही सच समझाने के लिए दुख दिया है मुझे।'

इलाज से ठीक हो गई मौसी। उनके व्यवहार में जादुई परिवर्तन हो गया। मुझे जहां भी मिलतीं आशीर्वाद बरसाए जातीं।

उन्हीं मौसी के घर चोरी का सुन दुख हुआ। जाकर पूछा तो पता चला चोर 12 हज़ार नगद और बीस तोले सोने पर हाथ साफ कर गए थे। मैंने मौसी को आश्वस्त किया कि मैं जो कुछ इस बाबत हो सकेगा करूंगा। थाने का इन्सपैक्टर मेरा सहपाठी है।

इन्सपैक्टर दिवाकर से जाकर मिला और सारी बात सुनाई। कुछ ही दिनों में चमत्कार हुआ। आजकल के जमाने में चोरी हो जाना तो सुनने में आता है लेकिन चोरों का पकड़े

जाना कभी सुनाई नहीं देता। अब तो यह सब सुनने की आदत भी नहीं रह गई है। लेकिन इस बार असम्भव, सम्भव हो गया। चोरों का एक गिरोह पुलिस के फंदे में आ गया। इस पर दूसरा तुर्रा यह कि चोरी का सामान भी बरामद हो गया। अब अगर चोरी का सामान बरामद हो भी जाए तो भी सारा माल कुर्द-फुर्द हो जाता है। लेकिन परम मित्र दिवाकर की कृपा से यहां चमत्कार पर चमत्कार होते जा रहे थे। अन्य सामानों के साथ उस गिरोह से गहनों की एक बड़ी पोटली बरामद हुई। दिवाकर के फोन करने पर मौसी को लेकर मैं थाने पहुंचा। गहनों की भारी भरकम पोटली दिवाकर ने मौसी के सामने रख दी। बहुत तलाशने पर उनमें मौसी सिर्फ अपने एक जोड़ी कांटे ही पहचान पाई। कंगन और गले के दो हार उनमें नहीं थे।

दिवाकर इशारे से मुझे भीतर अपने कमरे में ले गया। मुझे समझाया कि अपनी मौसी से कहो कि अपने गहनों के बज़न के अन्दाज़े से गहने पोटली से ले लें। वरना यहां तो बाद में सब बराबर हो जाएगा।

मौसी को भीतर ले जाकर मैंने सारी बात समझाई। लेकिन नहीं। सुनते ही मारे भय के मौसी का चेहरा झक सफेद पड़ गया। यह क्या कह रहा है बेटा। पराई चीज़ कैसे उठा लूं ?

मौसी समझने की कोशिश करो। आखिर तुम्हारा सारा सोना चला गया, नगद 12 हज़ार रुपये भी चले गए। अब यह मौका मुश्किल से हाथ लगा है। वैसे भी बाज, चील, कौव्वे मौका पाकर झपट पड़ेंगे। मैं नहीं कहता ज़्यादा उठा लो, उतना तोले ही लेना चाहिए आपको जितना आपका गया है।' मैंने थोड़ा जोर देकर मौसी को रास्ते पर लाना चाहा।

लेकिन नहीं। कोई असर नहीं मौसी पर। चेहरे पर कोई दुविधा नहीं। एक दृढ़ निश्चय की आभा चेहरे पर आन बिराजी। वह टस-से-मस न हुई--'ना बेटा ना। दूसरे के माल के बारे में सोचना भी पाप है। अपने तो इसमें यही दो कांटे हैं। आखिर ऊपर वाला सब देख रहा है। वह हमारी सही-गलत सोच को भी पकड़ लेता है बेटा। इस बारे में सोचना भी पाप है।'

सोच में पड़ गया मैं। इतनी साफ-सुथरी सोच। मौसी ने सम्भवत: ईशोपनिषद पढ़ी सुनी भी न होगी। जिसका पहला ही श्लोक है--ओ३म् ईशावास्यमिदं सर्वं यत् किंच जगत्यां जगत। तेन् त्यक्तेन भुंजिथा मा मृथ: कस्य स्विद्धनम्॥

संसार में जो कुछ भी चलायमान या गतिशील है उसमें गतिशील ईश्वर अवश्य ही व्यापक होना चाहिए। इस चलायमान वस्तु को त्यागते हुए ही भोगो, अर्थात् सुख लाभ करो। लालच मत करो। यह धन किसका हुआ है ? अर्थात् किसी का भी नहीं।

मेरा मित्र दिवाकर सर थाम कर रह गया। मौसी ने बड़े प्रेम से अपने दोनों कांटे उठाए

और उन्हें साथ लाई कपड़े की छोटी पोटली में डाल लिया। शेष सारे गहनों को 'इदम् न मम' भाव से देखा। संतोष की आभा से दमके जा रहा था मौसी का गोल-गोल चेहरा।

वापसी में अपने साथ जब मौसी चली, और थाने के बड़े ऊंचे गेट से बाहर आई, तब ठिगनी मौसी का कद मुझे थाने के गेट से भी ऊंचा लगा।

ooo

25, एम. आई. जी हाऊसिंग कालोनी,
उधमपुर - पिन 182101

पहाड़—1

❑ *कुलविन्दर सिंह मीत*

पहाड़ जानता है
रिस जाना नदी सा
और
समय के फ़फ़ोलों को
हरा रखना
बड़े पूजनीय हैं
ये पहाड़ के पत्थर!

पहाड़—2

आखिर कब तक रहेंगे दरम्यां
ये नफ़रतों के पहाड़
कल हम मिलेंगे
अपने-अपने
दरिया लिए
तो डूब ही जाएंगे
ये पर्वत
तने हुए!

ooo

तान्त्रिक

❑ कृष्णा अवस्थी

गांव के ऊपरी छोर पर ब्राह्मणों के तीन टोले थे इनके पास पुरुखों की सौंपी बहुत सारी जमीनें थीं। चूल्हे-चक्की की अब कोई चिन्ता भी नहीं 'मुफ्त का चन्दन घिस मेरे नन्दन' बाली उक्ति उन पर पूरी उतरी अंधा-धुंध जमीनें सस्ती-महंगी जो जिस भाव लगी बेचते गए और शराब पीते गए। अब कई जातियों के लोगों ने सस्ते भाव ज़मीन खरीद कर मकान बना लिए। ब्राह्मणों की जमीनें सिकुड़ते-सिकुड़ते सिकुड़ ही गईं और शराब की कुटैव सुरसा के मुंह की तरह दिनों-दिन बढ़ती ही गई। नाव में छिद्र छोटा ही क्यों न हो वह एक दिन नाव को ले डूबेगा। वही इन के साथ हुआ।

माधो पण्डित को पैसों की तंगी हुई तो घर का एक हिस्सा एक अध्यापिका को किराए पर उठा दिया। इस अध्यापिका का एक बेटा था जो बाहर कहीं नौकरी करता था और एक बेटी थी। जो यही सतरह-अठरह वर्ष की थी। अब मां-बेटी यहीं रहने लगीं।

मां के अतीत से अगर चादर हटा दी जाए तो कई कहानियों का पिटारा खुल जाए.....। पर छोड़िए।

भाग्य ने पलटा खाया सद्बुद्धि से प्रेरित और सुव्यवस्थित क्रिया-पद्धति और उत्कृष्ट रीति-नीति अपना पूजा-पाठ जप-तप के पथ पर अग्रसर हो गई। शुक्रवार था उसने व्रत किया था मन-ही-मन जाप भी चल रहा था। घंटी खाली थी अचानक उसके हाथ में दीपक की आकृति उभर आई और वह अतिरिक्त शक्ति से भर गई उस पर भार-सा पड़ने लगा भीतर से आवाज़ आई मेरा स्थान बना मेरा मंदिर बना, मेरी सेवा कर तथा लोकमंगल में लग जा अपना जन्म सफल कर।" जब जागो तभी सवेरा।

फिर क्या था सड़क के किनारे सुन्दर मन्दिर बन गया सुबह-शाम खूब रौनक होती नवरात्रों में तो क्या कहने, देसी घी के दीपकों की पांच लखी होती जाती। बात जंगल की आग की तरह फैलती गई की यह जो वाक देती हैं सत्य ही सिद्ध होता है। लोग आते चौकी के समय चूड़ी, घंटी, रूमाल कुछ भी रखते वह समस्या का हल कर देती।

मेरे स्थान की इलायची, मिश्री खाओ, बभूति लगाओ और पवित्र जल पियो सब ठीक होगा किसी-किसी को शारीरिक रोग तो किसी को ओपरा बता कर इलाज करती। लोगों की श्रद्धा दिनों-दिन प्रगाढ़ होने लगी।

उनकी बेटी निशा दूसरे कमरे में होती कुछ पढ़ाई में ढीली, कुछ मां की उपेक्षा या व्यस्तता। कई तरह के लोगों का घर में आना-जाना, औरतें-मर्द, लड़के-लड़कियां अपनी-अपनी समस्याएं रखते, बड़ा कमरा भरा रहता, हर पल उत्सव का सा माहौल रहता।

मकान मालिक का जवान लड़का निशा के इर्द-गिर्द मंडराने लगा उसकी चुहलबाजी बढ़ने लगी, निशा को रोक-टोक थी नहीं। बात बढ़ती गई मैत्री प्रगाढ़ आत्मीयता से होते हुई परिणय सूत्र में बंध गई। मां ने भी अपनी प्रतिष्ठा का ध्यान रखते हुए उनका विवाह करना ही उचित समझा।

निशा सातवीं फेल थी वहां अशोक दसवीं फेल राम मिलाई जोड़ी इक अंधा इक कोढ़ी। नौकरी-चाकरी तो थी नहीं। छोटी-सी मनियारी की दुकान थी, पिता जी का देहावसान हो चुका था, विरासत में मिल गई थी शराब की सौगात। छोटा-सा कच्चा घर व थोड़ी-सी ज़मीन का मालिक अब अशोक ही था। वह भी शराब में डूबा रहता तथा पिता के ही पदचिह्नों पर चलता। कुछ शराब, कुछ चौका-चूल्हा ही उनकी कमाई हड़प लेता। धीरे-धीरे गृहस्थी विस्तार पाने लगी, दो लड़के एक लड़की का जन्म हो गया। आमदनी बहुत कम नाममात्र थी।

नानी भी सहायता करती कुछ-कुछ देती रहती पर अब तक उसकी भी एक बहू व उसके भी तीन बच्चे हो गए थे, नानी सेवानिवृत्त थी।

अशोक की दुकान के पीछे एक कमरा था तथा छोटी-सी रसोई, वहीं यह कुनबा रहता था। और वह भी गरीबी, आभाव, तथा पिता के हर पल शराब में डूबे रहने जैसे वातावरण में बढ़ने-पलने लगा।

निशा अपनी गृहस्थी की दुर्दशा का बखान कहीं नहीं करती पर पड़ोस की महिलाओं की अनुभवी व पारखी आंखें सब कुछ बांच लेतीं।

पड़ोस में एक घर ऐसा है जहां से यह कभी-कभी निसंकोच हो लस्सी मांग लाती "मौसी लस्सी देना रात इन्हें चक्कर आ गया था। लस्सी पीने की इच्छा हो रही थी। मौसी भांप जाती-मुए ने शराब डट के पी थी रात बक रहा था निठल्ला कहीं का।

निशा के घर से थोड़ी दूरी पर काली मां का मन्दिर है गांव की स्त्रियां प्रयास करतीं कि प्रातः-सायं आरती के समय अवश्य पहुंचे वह सभी आतीं इसी बहाने एक-दूसरे का हाल-चाल भी पूछ लेतीं।

मंदिर के पास एक बहुत बड़ा कमरा है जहां कभी कोई सिद्ध बाबा रहते थे उनका धूना आज तक प्रज्वलित रहता है। यहां कोई-न-कोई साधू आ के टिक जाता।

इस बार भी एक नया साधू आया उसने स्त्रियों पर जाने क्या जादू डाला कि उनका वहां भी आना-जाना लगा रहता। जिसके घर में जो पकता उसे वह साधू बाबा को समर्पित करके स्वयं को धन्य समझती। साधू बाबा के भोजन की समस्या इन गांव की स्त्रियों ने हल कर दी। एक दिन निशा भी झिझकते-झिझकते सादा भोजन परोसने लगी उसने संकोच से

कहा--"महाराज बस भिलनी के बेर ही समझ के ग्रहण कर लेना।" "अरे! अरे! यह तुम क्या कह रही हो, हम तो बस भाव के भूखे हैं। भाव के आगे तो सब व्यंजन व्यर्थ। मेरे लिए तो देवी यही अमृत हैं।"

निशा गद्‌गद् हो गई उसके पकाए भोजन का इतना सम्मान कर रहे है स्वामी जी।

अब निशा प्याज़ के छिलकों-सी परत-दर-परत खुलने लगी। धीरे-धीरे उसकी पारिवारिक व आर्थिक स्थिति साधू बाबा ने भांप ली बोले--"देवी मैं सब जानता हूं तुम्हारे माथे की रेखाएं बता रही हैं। ग्रह नीच चलें हैं, तुम्हारी सुख-समृद्धि को डस रहे हैं पर चिन्ता मत करना तुम शरण में आ गई हो तो तुम्हारी चिन्ता तुम्हारी न होकर अब मेरी बन गई है।"

निशा का मन बल्लियों उछलने लगा--"स्वामी जी क्या आप कभी मेरी झोंपड़ी में अपने पवित्र चरण डालेंगे ?"

"नहीं देवी। हम गृहस्थियों के यहां नहीं जाते पर तुम्हारा भाव देख कर लहर आ गई तो कभी पहुंच जाएंगे।"

निशा के पांव धरती पर नहीं पड़ रहे थे। घर पहुंच कर उसने अपने पति को सारी बातें बताई कि जो महात्मा अभी तक किसी भी गृहस्थी में नहीं गए वह हमारे घर आने को तैयार हो गए हैं। ये सब शुभ संकेत हैं। उसने यह भी बताया कमला मौसी को बिभूति दी तो उसका सिरदर्द ठीक हो गया। राजू का बुखार टूट गया। विनोद को डाक्टरी में दाखिला मिल गया आदि आदि।

अशोक भी सोचने लगा यह साधू कोई विशेष शक्ति सम्पन्न है। उन दोनों ने अपनी सामर्थ्य के अनुसार सामान जुटाया, पकवान बनाए तथा साधू बाबा को घर पर बुलाया। ठीक समय पर निमन्त्रण स्वीकार कर वह घर आए घर की स्थिति का मन-ही-मन अवलोकन कर लिया। निशा ने प्रेम और श्रद्धा से उन्हें भोजन कराया। निशा साधू के पास बैठ कर मुखर हो उठी, अपने जीवन के कई गुह्य कपाट खोल उसे उनमें झांकने का सुअवसर उसने सहज में ही प्रदान कर दिया। निशा को लगता जीवन की राहें कितनी पथरीली एवं कंटकाकीर्ण थीं, उन पर चलते-चलते वह कितनी थक गई थी कि अचानक एक घना विशाल बरगद का पेड़ दिख गया हो जहां उसे शीतल छाया में विश्रांती के अमूल्य पल मिल गए हों। या जीवन की मरुभूमि में अचानक कोई शीतल जल का झरना फूट पड़ा हो। वह अब प्रसन्न रहने लगी थी। घर में काम करते-करते वह गुनगुनाती।

निशा की मां का मन्दिर व घर पास ही था वह उन्हें वहां भी ले गई। बाबा जी बहुत प्रसन्न हुए, मां ने दान-दक्षिणा दी तथा भोजन-वस्त्र की व्यवस्था कर उनका यथायोग्य सम्मान किया।

एक दिन साधू बाबा ने उन्हें मंदिर के प्रांगण में हवन करने को कहा, मां जी बहुत प्रसन्न हुई। हवन की तथा भंडारे की व्यवस्था हुई, सभी ने साधू बाबा के चरणों में मत्था टेका। दक्षिणा चढ़ाई तथा आशीर्वाद लिया। उस दिन भी साधू बाबा पर नोटों की खूब वर्षा हुई।

साधू बाबा ने सभी महिलाओं को अपने आश्रम (जो यहां से चार-पांच घन्टे का रास्ता था) में आने का निमन्त्रण दिया। वहां रात-भर कीर्तन होगा, जगराता होगा तथा दूसरे दिन भण्डारा होगा। पूरी बस भर कर ढोलकी चिमटा लेकर गाती-बजाती साधु बाबा के आश्रम में पहुंच गई। एक घने जंगल में बड़ा रमणीय स्थल था। रात-भर जगराता हुआ, दूसरे दिन भण्डारा हुआ तथा उसी बस में महिलाएं लौट पड़ीं सभी साधू बाबा के गुणगान करते न अघाते।

काली मां के मन्दिर में औरतें आतीं तो पास के बड़े कमरे में धूना उन्हें साधू बाबा के बिना सूना-सूना लगता क्योंकि वह दूर अपने आश्रम में ही टिक गए थे।

फिर अचानक धूमकेतू से कहीं से प्रकट हो गए। कुटिया में गहमा-गहमी बढ़ने लगी। बाबा को भोजन कराने की अपनी बारी की सभी उत्सुकता से प्रतीक्षा करने लगे। कुल मिलाकर साधू बाबा ने प्रत्येक के हृदय में अपना स्थान बना लिया था।

निशा के घर में भी साधू ने कई बार भोजन किया, अब धीरे-धीरे अशोक को साधू बाबा का मुंह उठा कर घर आना वह भी समय-कुसमय का विचार किए कुछ-कुछ अखरने लगा था। तथा एक दिन जाने साधू की आंखों में क्या पढ़ लिया कि उसने साधू बाबा की उपेक्षा कर भविष्य में कुटिया में ही रहने की प्रार्थना कर दी।

साधू बाबा भड़क उठा--"तुम्हारी यह हिम्मत मेरा अपमान कर रहे हो। अरे हम तो किसी के घर जाते तक नहीं थे, यह तो तुम पर कृपा कर दी और तुम ने ऐसा व्यवहार किया मेरे साथ "पैर पटकता साधू बाबा बड़बड़ाता अपनी कुटिया की ओर चल दिया।

निशा हाथ जोड़ दया मांगती, आंसू बहाती पीछे-पीछे कुटिया तक आई।

"भूल जाइए महाराज यह अपने-आपे में होते ही कहां है। मैं ही इनकी ओर से क्षमा मांगती हूं।"

"दूर हट" मत टपका यह मगरमच्छ के से आंसू साधू क्रोध से फुफकार उठा उसने धूने से चुटकी भर बिभूति ली और कुछ मन्त्र पढ़ कर फूक मार कर निशा की ओर उड़ा दी। "देखती जाना अब तमाशा"--साधू लाल-लाल आंखें तरेर कर बोला।

निशा की धीरे-धीरे भूख कम होने लगी वह चुपचाप रहती। उसे कुछ अच्छा नहीं लगता, वह उदास रहती, घर के काम करने की उमंग नहीं रही। मां की ऐसी हालत देख बच्चे सहमे-सहमे रहने लगे। छोटी-छोटी बातों पर वह उन्हें डांट देती।

पड़ोस की मौसी से निशा कह रही थी --मौसी मुझे देख क्या होता जा रहा है, मुझे बड़ी कमजोरी महसूस हो रही है, चक्कर-सा आता है, देख न मौसी मेरी चमड़ी कैसी हो गई है, सुन्न रहती है, उसने बाजू की चमड़ी को दूसरे हाथ से खेंच कर बताया चिकोटी काटो तो पीड़ा नहीं होती, मौसी तुम छुओ न चिकोटी काटो मुझे कुछ नहीं होगा--वह किसी बालक-सी जिद्द करने लगी।

पड़ोसिन मौसी की आंखें डबडबा आई--"क्या हो गया रे तुझे कल की छोकरी साल भर में बुढ़ा गई।"

निशा के अधर फीकी मुस्कान से फैल गए। वह रोती-रोती आंखों से मौसी को निहारती रही।

''निशा कल रात से लापता है''

''कहीं दरिया में छलांग तो नहीं लगा दी''

''अरे सभी जगह तो ढूंढ आए''

''इसकी मां को खबर कर दो''

''मेरे विचार में पुलिस को भी खबर कर देनी चाहिए। भिन्न-भिन्न प्रकार की अटकलें लगने लगी।''

तीनों बच्चे बुक्का फाड़ के रो रहे थे। धीरे-धीरे बात गली गांव से होती शहर तक फैल गई। मन्दिर वाली कुटिया देखी पता चला साधू भी नहीं था, अब सन्देह की सूई साधू बाबा की ओर उठने लगी। सभी एक ही बात कहने लगे हो-न-हो साधू बाबा ही उसे ले उड़ा।

निशा की मां को जब इस बात का पता चला तो उसके पांव तले की जमीन खिसक गई। उसे अपना आसन ढोलता हुआ सा दिखाई देने लगा। लोग क्या कहेंगे। समाज में उसका कितना मान-सम्मान था, बड़े-बड़े लोग गाड़ियां लेकर द्वार पर दानी उपहार मां के चरणों में भेंट करते मात्था टेकते ''उफ! कालिख पुत गई।''

फिर अपने-आप को सम्भाला शहर के कुछ दमदार लोगों को बुला कर विचार-विमर्श किया। सभी ने यही कहा कि साधू की दूर बनी कुटिया में जाकर पता लगाया जाए तभी वास्तविकता सामने आएगी।

लाला राम लाल जी ने अपनी कार एवं ड्राइवर देकर उदारता दिखाई। अब तीन कारों में लोग बैठ कर निशा की मां को ढाड़स बंधाते-बंधाते साधू के आश्रम में जा पहुंचे। निशा को वहां देख कर मां खूब रोई सभी ने साधू बाबा से पूछताछ की।

साधू बोला--मुझ पर व्यर्थ लांछन मत लगाओ मैं इसे नहीं लाया ले जाओ इसे अपने साथ हमारी साधना में खलल मत डालो तथा हमारे इस स्थान की पवित्रता को नष्ट मत करो ''चली जाओ यहां से दुबारा मुंह मत दिखाना'' सभी ने निशा को समझाया-बुझाया घर चलने की अनुनय-विनय किया पर यह क्या --निशा ने घर जाने से मना कर दिया --''मैं किसी को नहीं जानती मैं कही नहीं जाऊंगी। जोर-जबरदस्ती करके उसे गाड़ी में बिठाने लगे पर पता नहीं उस में इतनी शक्ति कहां से आ गई थी कि किसी को लात मार, किसी को घूंसा तथा किसी को दांतों से काट दिया। हाय! हाय! करते जैसे-तैसे सब घर पहुंचे। मां ने निशा से प्यार से पूछा--''बता तू मेरे साथ चलना चाहती है या अशोक के साथ ?''

निशा अशोक के साथ घर चली गई। न नहाती थी, न खाती-पीती, चुपचाप बिस्तर पर पड़ी रहती। धीरे-धीरे बुड़बड़ाती मुझे छोड़ दो मैं यहां नहीं रहूंगी।

दो दिन बीते ही थे कि निशा फिर घर से गायब हो गई। सभी समझ गए कि वहीं आश्रम में ही होगी पुलिस में रिपोर्ट दर्ज कराना ही सभी ने उचित समझा। अब निशा की मां कुछ लोगों को तथा पुलिस को ले कर साधू के आश्रम में गए पूछताछ की।

साधू ने बड़ी विनम्रता से पुलिस को बताया कि --''न मैं इसे भगा कर लाया हूं, न मैं इसे रखना चाहता हूं आप इसे ले जाइए ताकि मैं अपनी साधना आनन्द से कर सकूं तथा भविष्य में यह मुझे तंग न करें, यह पवित्र स्थली है यहां की शान्ति भंग न की जाए।

पुलिस जैसे-तैसे उसे ले आई व उसे उसकी मां को सौंप दिया।

मां ने उसे एक अलग कमरे में रखा। उसका भगवां चोला उतार कर जला दिया तथा उसे सलीके के वस्त्र पहना कर मुख्यद्वार पर ताला जड़ दिया बस आवश्यक कार्य के लिए बाहर निकाला जाता, पहरा सख़्त था, भोजन-पानी वहीं परोस दिया जाता।

घर की व्यवस्थित दिनचर्या में व्यवधान पड़ने से भीतर-भीतर सभी परेशान थे पर क्या करें।

जो सिगरेट की डिबिया उसने छिपा कर रखी थी धड़ा-धड़ फूंक डाली। बन्द कमरे से ज़ोर-ज़ोर से चीखने की आवाज़ आती सिगरेट लाओ, तम्बाकू लाओ, मुझे बाहर निकालो नहीं रहना है मुझे इस कैद में मुझे साधू बाबा बुला रहा है मुझे जाने दो।

मां ने धीरे से द्वार खोला--''निशा! बिटिया शान्त हो जा मैं तेरी मां हूं, मेरे साथ हस बोल कुछ कमी नहीं है यहां अच्छी स्त्रियों की तरह रह।''

मैं किसी को नहीं जानती कब की मां, कौन मां हा-हा-हा-हा।

बड़ी आई मां कहलवाने वाली।

तीनों बच्चे मां से मिलने नानी के घर आए उन्होंने द्वार खोला--मां! मां! हमें आपकी बहुत याद आती है। हम बहुत अकेले पड़ गए है, हमें छोड़ के मत जाओ, घर चलो ऊं-ऊं-ऊं छुटका बिलबिलाने लगा।

निकलो यहां से उसने लड़के को जोर का धक्का दिया उसका सिर दीवार से टकरा जाता अगर मामी दौड़ कर पकड़ न लेती। शोर सुन कर नानी आ गई उसने अपनी बहू की सहायता से तीनों बच्चों को बाहर निकाला तथा कमरे में ताला जड़ दिया। नानी निढाल हो पलंग पर औंधी पड़ गई। तीनों बच्चे बिसुरते रहे मामी ने उन्हें सम्भाला पानी पिलाया, प्यार किया और भोजन खिलाया।

बड़ी देर तक निशा की मां को नींद नहीं आई, सारे जीवन की तस्वीर घूमने लगी, कभी सुख नहीं किया अब कहीं मां के चरणों में शरण ली तो भटकन से विश्रान्ति मिल रही थी। कहां भूल हो गई मां जो जीवन की सांझ में फिर दुःख की काली घटाएं आ घिरी रोते-रोते थक गई। जाने कब नींद की झपकी आ गई।

प्रातः ज्यों ही वह उठी देखा तो सन्न रह गई थी कमरे की खिड़की खोल निशा किसी चिरैया-सी फुर्र हो गई थी।

मां को चक्कर आ गया वह वहीं गिर पड़ी उसे सम्भाल बहू अन्दर ले गई। मां ने सिर पीट लिया। नहीं रे.... नहीं....अब शक्ति नहीं रही मेरी, इस जर-जर देह में मुझ से कुछ नहीं होगा, यह बेटी बन के बदला ले रही है शत्रु है मेरी। मेरी कोख से जन्म ले कर मुझे सहारा देने की जगह सता रही है। आज से तू मेरे लिए मर गई और मैं आज से तेरे लिए मर गई। जहां जाना चाहती है चली जा। निशा की मां ज़ोर-ज़ोर से चिल्ला-चिल्ला कर आंगन में पागलों की तरह घूम रही थी। व्यर्थ है सब कोई किसी का नहीं.....।

धीरे-धीरे निशा की खोज खत्म हो गई। अब उसका नाम भी नहीं लिया जाता।

निशा के बच्चों ने स्वयं को परिस्थियों के अनुसार ढाल लिया।

निशा का पति अशोक चुपचाप दुकान पर बैठ सिगरेट फूंकता निशा के साथ बिताए पलों को याद कर रोता रहता। और शराब के प्यालों में डूब जाता।

निशा की मां धीरे-धीरे कमजोर होती गई, बीमार रहने लगी फिर पेट का आपरेशन हुआ। बेटी का गम कहीं गहरे बैठ नासूर बन गया था। वह घुन लगी लकड़ी-सी खोखली होती गई।

दिसम्बर महीना था। कड़ाके की ठण्ड थी। ओले भी पड़े थे। एक रात निशा की मां ने जोर की चीख मारी। बहू दौड़ती हुई आई पर न जाने वह क्या बुदबुदाई और उसकी सांस उखड़ गई। घर में चीख-पुकार शुरू हो गई। पोते को होस्टल से बुलाया गया रोते-धोते दाह संस्कार हो गया।

अब इस मन्दिर के बाहर गाड़ियां नहीं रुकतीं। यह स्थान सूना-सूना सा श्मशान का सा लगता। बहू प्रात: घर के आवश्यक काम निपटा कर दफ्तर चली जाती। दोनों पोतियां कालेज के लिए निकल पड़ती, लड़का (पोता) होस्टल में।

काली मां के मन्दिर के साथ सटी कुटिया में पुजारी रहता था। धूना तो सुलग जाता पर वहां ठहरने वाले किसी साधू के पास अब गांव की बहू-बेटियां नहीं जातीं, न ही कोई उनके दर्शन करता।

ooo

गांव डाकघर बिन्द्रावन, तह. पालमपुर,
कांगड़ा हि. प्र. -176061

वापसी

❑ प्रवीण शर्मा

आज वह एक लम्बी अवधि के बाद अपनी बस्ती वापिस लौट रही थी। वहां पर बिताया हुआ एक-एक पल उसकी आंखों में तैर-सा रहा था। मन उत्साह से सराबोर था। सोच रही थी अपने लोगों से मिलूंगी। अपनी बस्ती से, अपनी धरती, अपनी मिट्टी से मिलूंगी। उसके पांव अपने-आप आगे बढ़े चले जा रहे थे। बस्ती को पुनः देखने की उमंग उसके कदमों को गति प्रदान कर रही थी। चलते हुए वह चारों ओर फैले सन्नाटे को महसूस कर रही थी। उसके सामने दूर तक फैला सुनसान कच्चा रास्ता था मानों किसी ने मिट्टी के रंग की चटाई बिछा रखी हो। दाएं-बाएं, आगे-पीछे, दूर-दूर तक फैली यह निस्तब्धता उसे हैरान कर रही थी। इस वीरान पथ पर वह नितान्त अकेली चल रही थी। वह थी और उसकी पदचाप। बस! कहीं कोई आहट नहीं, कोई आवाज़ नहीं। चारों तरफ नीरवता। बस सन्नाटे का ही साम्राज्य था।

चलते हुए उसे लगा वह अब थकने लगी है, परन्तु अभी रास्ता बहुत लम्बा था।

सूर्यदेव अपनी दिशा परिवर्तित करते चले जा रहे थे। पहले सीधे सर पर थे परन्तु अब धीरे-धीरे पश्चिम की ओर प्रस्थान कर उसे दिशा निर्देश दे रहे थे। वह चलते-चलते काफी रास्ता तय कर चुकी थी। उस ने देखा सामने सड़क के दोनों ओर ऊंचे-ऊंचे भवन आकाश की पगड़ी पहने अकड़ कर खड़े हैं। वह सोचती है, पहले तो यहां दूर-दूर तक फैला घना जंगल हुआ करता था। लेकिन बस्ती वालों को शायद अब बस्ती से बाहर आकर रहना ज़्यादा सुखद लगता है। इसीलिए जिन पेड़-पौधों के आश्रय में रहकर बस्ती वाले जीवन का सुख भोग रहे थे, अब उन्हीं को कटवा कर वे सुन्दर तथा मनमोहक घर-दालान तथा बड़े-बड़े बंगले निर्मित करने में लग गए हैं। वह सोचने लगी कहां हैं वे लोग जो पर्यावरण संरक्षण की बड़ी-बड़ी बातें करते हैं। यहां आकर देखें, इन पेड़-पौधों और जंगलों के बीच रहने वाले ही इनके प्रति कितने निर्मम हो चुके हैं। उस के कदम निरन्तर आगे बढ़ रहे थे, परन्तु वह अचम्भित थी कि आकर्षक रंगों से लिपे-पुते घरों तथा दूर-दूर तक फैले रास्तों पर कोई इन्सान क्यों दिखाई नहीं दे रहा। क्यों सम्पूर्ण वातावरण ही मौन साधे हुए है। अब उसे यह निस्तब्धता बेचैन कर रही थी। स्वयं को ढाड़स बधाने हेतु वह दूर खड़े भवनों को देख कर ही संतोष का अनुभव करने लगी। स्वयं को सांत्वना देते हुए वह सोचने लगी कि भवनों के निकट पहुंच कर लोगों की चहल-पहल अवश्य आरम्भ हो जायेगी। परन्तु झूठे आश्वासनों से मन को बहलाना सरल न था। उस को निराशा घेरने लगी थी पर उसे तो चलना था, चलते ही जाना था।

उसे याद आया बस्ती से बाहर बरगद और पीपल के वृक्षों से घिरा एक कुआं भी हुआ करता था, जिस के पास लोगों का मेला-सा लगा रहता था। पूरी बस्ती के लोगों की सुबह-शाम यहां चहल-पहल रहती। कोई पानी से भरा घट रस्सी से खींच रहा होता तो कोई सिर पर पानी का बरतन उठाए बस्ती की तरफ जा रहा होता। कोई किसी को पानी का भरा मटका उठाने में मदद कर रहा होता तो कोई अन्य किसी के साथ मिल जल भरने में अपना श्रमदान दे रहा होता। एक-दूसरे को देखते ही लोग प्रेम से गद्‌गद् हो जाया करते। सब इस प्रकार से एक-दूसरे के कार्य में हाथ बटाते, मानो 'वासुदेव कुटम्बकम्' की भावना को चरितार्थ कर रहें हों।

यादों में घिरी वह कब उस चौराहे पर पहुंच गई उसे पता ही न चला। लेकिन यह क्या! कुएं के आस-पास भी बस्ती के घर बन गए हैं। और वह पेड़ों का झुरमुट न जाने कब का यहां से कूच कर चुका है। और पनघट की मुंडेर पर मिट्टी और कूड़े का ढेर जमा है।

कुएं के सामने सड़क के दूसरी ओर छोटी ईंटों से बना शिव-मन्दिर तो आज भी है, परन्तु वहां पूर्ण सन्नाटा है। मन्दिर सुनसान पड़ा है। मन्दिर की घंटियां न जाने कब से मौन साधे ऐसे मानव की प्रतिक्षा कर रहीं हैं जो इन में पुन: श्रद्धा-नाद भर सके। मन्दिर और कुआं ऐसे दीन-हीन दिखाई दे रहे थे मानों इन के साथी वृक्षों को काट कर किसी ने इन्हें आश्रयहीन बना दिया हो। वह चारों तरफ फैली सुख-सुविधा से सम्पन्न बस्ती को देख हतप्रभ होती जा रही थी।

वह सोच रही थी उस के जाने के बाद इस बस्ती का कायाकल्प ही हो गया। कहां तो सारी बस्ती मिट्टी की दीवारों तथा घास-फूस की छतों से भरी हुई थी और आज ऊंचे-ऊंचे महलनुमा घर बस्ती के विकास की कहानी कहते प्रतीत हो रहे हैं। परन्तु घरों के बाहर, आगे-पीछे कोई मानव-पुत्र, कोई नव-वधू, किन्हीं बच्चों की किलकारियां मारती टोली क्यों नहीं। हाथ में पूजा की थाली लिए मन्दिर की ओर जाती कोई तरुणी, कोई वृद्धा दिखाई क्यों नहीं देती।

दिनकर अस्ताचल को प्रस्थान कर रहे थे। पश्चिम दिशा के कुंड से नहा कर आती हुई किरणें सम्पूर्ण वातावरण को भगवें रंग में रंग रहीं थी।

अब सन्नाटा और भी गहरा गया था। बन्द दरवाज़ों और खिड़कियों को देख-देख कर वह ऊब चुकी थी। अचानक उसने देखा एक वृद्ध लाठी टेकता हुआ धीरे-धीरे चलता आ रहा है। खुशी से उस का हृदय धड़क उठा। वृद्ध के पास पहुंच कर उसने कहा— बाबा जी नमस्कार। आप ने मुझे पहचाना नहीं। मैं इसी बस्ती से गई हूं। आप कमला के पिता है ना। वृद्ध ने उस की ओर देख कर 'ना' में गर्दन हिलाई और आगे को चल दिया। वह उसे जाते हुए देखती रही, वृद्ध पूरा नरकंकाल था।

उस का मन विचलित हो उठा। वह सोचने लगी -- यहां के लोग शायद अपने लोगों को, अपनी परम्पराओं को, अपने मूल को और जीवन-मूल्यों को भुला बैठे हैं। ये बेचारे शायद

अपनो को पहचानने की शक्ति भी खो बैठे हैं। शायद सब की स्मरण-शक्ति जवाब दे चुकी है।

एकाएक उसके विचारों का सिलसिला टूटा। सामने उसका स्कूल है, जहां पर उसने अपनी प्राथमिक शिक्षा प्राप्त की थी। वह अभी भी अपनी उन सखियों को नहीं भूली थी जिनके संग उसने अपना बचपन गुज़ारा। जिस अध्यापक से उसने स्वरों और व्यंजनों का उच्चारण सीखा था उसे वह एकबार देखना चाहती थी। लेकिन वह स्कूल की इमारत को देख दंग ही रह गई। लोगों की घास-फूस की झोपड़ियों की जगह आलीशान बंगलों ने ले ली थी परन्तु 35 वर्ष बाद भी स्कूल की इमारत लाजवन्ती नारी की तरह अपनी जर्जर हालत को सम्भाले खड़ी थी।

चलते-चलते उसकी सांस थोड़ा फूलने लगी थी। उसकी नज़रें किसी परिचित चेहरे को ढूंढ रही थी। लेकिन परिचित क्या कोई अपरिचित भी दिखाई नहीं दे रहा था।

विचारों का तांता फिर आरम्भ हो गया। उसकी सोच ने प्रश्न किया, कहां चले गए बस्ती के लोग। इतनी खुशहाल बस्ती के त्याग का तो कोई औचित्य नज़र नहीं आता। विचारों के इसी ताने-बाने में गुम वह बस्ती की धर्मशाला के पास कब पहुंच गई उसे पता ही न चला। लेकिन यह क्या इस इमारत की छत कहां गई। केवल दीवारें, किसी राहगीर को, किसी धुम्मकड़, किसी फकीर, बस्ती के किसी मेहमान को कैसे सुरक्षा प्रदान करेंगी। उसे याद आया जब यहां पर दूर-दूर से आकर कोई महात्मा ठहरा करते तो महीना-भर एक उत्सव का सा वातावरण रहा करता। रात-दिन कथाएं-वार्ताएं होती रहतीं। हवन-यज्ञ से पूरा वातावरण आध्यात्मिक-सा हो उठता। लेकिन यहां पर भी वही निस्तब्धता। वह भीतर तक हिल-सी जाती है। अपने भूतकाल का मोह ही उसे यहां तक लेकर आया था। लेकिन यहां तो सब कुछ उलटा-पुलटा हो चुका है। यहां आने से पहले वह सोचा करती थी कि जब वह अपनी बस्ती में प्रवेश करेगी, उसकी अपनी मिट्टी का हर धूलि-कण, गली का हर कंकड़-पत्थर खिल उठेगा। बस्ती का एक-एक पेड़, हर एक मार्ग, हर घर एवं दीवार उसे गले से लगा लेगी। एक-एक पेड़ झूम-झूम कर पूछेगा क्यों जी इतने सालों के बाद हमारी याद आयी। बस्ती का हर फूल, हर पत्ता उस के आने पर महक उठेगा। उस की पदचाप पहचान जायेगा। लेकिन यहां तो जिन पेड़ों के इर्द-गिर्द वह लुका-छिप्पी का खेल खेला करती थी वह भी कहीं दिखाई तक नहीं दे रहे थे। सुन्दर छायादार पेड़ों के स्थान पर अब आकर्षक भवन मुंह फुलाये खड़े थे। उसे धक्का-सा लगा। इतने से अन्तराल में इतना फेरबदल। कहां तो बस्ती के लोग किसी छोटे-से-छोटे जीव-जन्तु को मारना महापाप समझते थे और कहां अपने हमउम्र वृक्षों के साथ यह दुर्व्यवहार। मानव को समय ने कितना संवेदनहीन बना दिया है। उसकी सुख-सुविधा की लालसा ने, उसके स्वार्थों ने उसे कितना निर्मम बना दिया है। या फिर शायद इन लोगों का दृष्टि-परिवर्तन हो गया है। हरे-भरे गलियारों की जगह इन्हें अब ईंट, रोड़े, बजरी, सीमेंट ज़्यादा आकर्षक, ज़्यादा लाभप्रद, अधिक आरामदायक तथा टिकाऊ लगने लगे हैं। शायद यह इस युग की सब से बड़ी त्रासदी होगी कि मानव ने अपने क्षणिक सुख के लिये जीवनदायक एवं प्राणदायक हरे-भरे पेड़ों को कटवा कर अपनी भावी पीढ़ी का जीवन स्वयं दाव पे लगा दिया। वह बस्ती के बीच चौराहे पर पहुंच जाती है। उसे बस्ती का अट्टहास सुनाई देता है। इन सूनी

गलियों में, सूने चौराहों पर, कुएं की मुंडेर पर किसे खोज रही हो ? यहां तो कई-कई दिनों तक मुझे भी कोई बाहिर दिखाई नहीं देता। घरों के आंगनों को इन के बड़े-बड़े ड्राइंगरूम खा गये। लोग घर के भीतर ही अपनी सुख-सुविधा का सामान जुटा कर, मस्त पड़े रहते हैं। इन्होंने घरों के भीतर ही ऐसी मशीने लगवा ली हैं कि बैठे-बैठे ही सब कार्य होता चला जाए। खाली समय में वहीं पर मशीनों के माध्यम से ही नाच-गाना चलता रहता है। हास-परिहास चलता रहता है। बच्चों को बाहर खुले में खेलने की आवश्यकता ही नहीं रही। घरों के भीतर ही मशीनें आपस में खेलती हैं, हंसती हैं, नए-नए करतब दिखाती हैं और बच्चे मशीनों के इस खेल को देख कर ही खुश हो लेते हैं। अब किसी से मिलने-मिलाने की प्रथा भी समाप्त हो चुकी है।

बस्ती की व्यथा की गूंज उसे और अधिक व्यथित कर रही थी। लेकिन वह फिर भी किसी को मिलने की आकांक्षा लिए चलती रही। अचानक उसकी तन्द्रा टूटती है। वह अपने-आप को अपने पुराने घर के सामने खड़ी पाती है। घर के बन्द किवाड़ों को खोलने के लिए उसे अपनी बची-खुची संचित ऊर्जा का प्रयोग करना पड़ता है। वह घर के भीतर प्रवेश करती है। घर में रहने वाली प्रौढ़ महिला उसे देख कर हैरान हो जाती है। और कह उठती है-- अरे, तुम आज इधर कैसे ? प्रौढ़ा की बात का उत्तर दिये बिना वह हतप्रभ-सी पूछती है। घर के आंगन में जो विशाल नीम का पेड़ हुआ करता था, कहां गया। प्रौढ़ा उस की ओर देखे बिना कहती है— तुमने देखा नहीं बस्ती का कैसा कायाकल्प हो गया है। फिर नीम पर तो किसी का साया था, सो कटवा दिया। ठंडी हवा का कार्य अब मशीनें कर लेती हैं, फिर नीम अब बोझ-सा बन गया था। रोज़ ही नीम के पत्ते साफ़ करने पड़ते थे। प्रौढ़ा निरन्तर कुछ कहे जा रही थी। परन्तु वह अब सुनते हुए भी कुछ नहीं सुन रही थी।

उसे याद आ रहा था, वह सुबह उठती तो पूरा आंगन नीम की निमोलियों से भरा होता। वह अपनी छोटी-सी टोकरी में भर कर उन्हें छोटे-छोटे आम बताकर सब को फल बांटती। कभी उसकी टहनियों के साथ झूला डाल सखियों के संग झूला झूलती। पतझड़ के मौसम में सारा आंगन सब्ज़ और पीली पत्तियों से भर गया होता। उन पर चलते हुए फिसलने का आनन्द वह आज भी नहीं भूल पाई है। उसे कई बार अहसास हुआ करता कि घर के बुज़ुर्ग दादा जी की तरह यह नीम भी हमारा कोई बुज़ुर्ग रहा है। नीम के कट जाने की पीड़ा उसे पुनः वर्तमान के कठोर धरातल पर पटक देती है। वह एकाएक चिल्ला उठती है--आप ने नीम नहीं काटा, कत्ल किया है। वह निढाल होकर पास ही पड़ी कुर्सी पर गिर-सी जाती है। उसकी आंखें अपने-आप मुंद रही थी परन्तु एक संकल्प उसके भीतर दृढ़ होता जा रहा था। वह इस बेजान-सी बस्ती से शीघ्र अति शीघ्र वापिस लौटने की हिम्मत जुटा रही थी।

ooo

सी-11, क्षेत्रीय अनुसंधान प्रयोगशाला,

कैनाल रोड, जम्मू

सफ़र अपना-अपना

❑ *सुभाष बाली*

दिल्ली इन्दौर लिंक एक्सप्रैस पूरी गति से दौड़ी जा रही थी। रात के सन्नाटे में केवल पटड़ी की ठकाठक और कभी इंजन का हूटर सुनाई देता था। सभी के सभी यात्री खाना खाकर सोने की तैयारी में थे। मैंने भी अपनी बीच वाली बर्थ का हुक निकाला और उसे सीधा कर लिया। 'अटेन्डेंट' आया और बिस्तर रख के चला गया। मैने बिस्तर बिछाया और खिड़की की ओर सिरहाना रख के लेट गया। मुझे रेल के सफर में नींद वैसे भी कम ही आती है। इस पर कई यात्री डिब्बे में इधर-उधर घूमते रहे। कुछ एक ज़ोर-ज़ोर से गप्पें हांकते रहे। किसी प्रकार सोने का प्रयास कर ही रहा था कि ट्रेन किसी स्टेशन पर रुक गई। एक भारी-भरकम सज्जन एक महिला के साथ आकर सामने वाली दो सीटों पर विराजमान हो गए। ट्रेन कुछ ही पलों में फिर से चल पड़ी। ज्यों ही वह सज्जन बिस्तर जमाकर लेटे ही थे कि ज़ोर-ज़ोर से ख़र्राटे भरने लगे। ट्रेन की गति के साथ उनके ख़र्राटों की गति भी बढ़ने लगी। इतनी भयानक आवाज़ थी ख़र्राटों की, कि रेल की आवाज़ भी दब के रह गई। नींद का प्रश्न ही नहीं, उल्टे बेचैनी बढ़ गई। परेशानी की हालत में करवटें बदलने के सिवा और कोई चारा न था। रात एक बजे उठकर 'बाथरूम' गया, फिर आकर अपनी सीट पर लेट गया। थोड़ी ही देर में टी-टी-आए व अटेन्डेन्ट पैसेज से गुज़रे।

''कोटा कब पहुंचेगी ?'' किसी ने पीछे वाली बर्थ से पूछा। ''एक घण्टा लेट चल रही है, पौने चार बजे तक पहुंच जायेगी।'' ''तो भाई, कोटा में जगा देना'' उस व्यक्ति ने अटेन्डेन्ट से कहा।

ख़र्राटों की परेशानी से हटने हेतु मन को अन्य विचारों की ओर मोड़ा। बिचार आने जाने लगे। भला मन की गति की भी कोई सीमा है। एक क्षण में कहीं-से-कहीं पहुंच जाता है। सोचने लगा 'अगले दिन ट्रेन लगभग एक डेढ़ बजे इन्दौर पहुंच जायेगी।' 'आर्मी की गाड़ी महू के लिए मिल हो जायेगी-बेटी से मिलने की उत्सुकता बढ़ने लगी थी। छोटा नाती भी दो बजे तक स्कूल से आ जायेगा कितना खुश होगा अपने नाना से मिलकर। जमाई बाबू तो दो दिन पश्चात् ही आएंगे--आर्मी की डयूटी ही ऐसी है।' इन्हीं सुखद विचारों में खोये हुए न जाने कब झपकी लग गई।

अचानक नींद टूटी, ट्रेन पूरी गति से भागी जा रही थी। ख़र्राटे भी कुछ धीमे पड़ गये थे। घड़ी प्रात: के तीन बजा रही थी। डिब्बे में सन्नाटा-सा था। प्राय: सभी यात्री गहरी नींद में थे। फिर से सोने का प्रयास किया, किन्तु नींद नहीं आई। सीट से उठा, चप्पल पहनी और बाथरूम की ओर चल पड़ा। ट्रेन झटके ले रही थी इस कारण सीटें पकड़ कर चलना पड़ा।

"अरे यह कौन सोया है पैसेज में ?" मैं अचानक चौंक गया। एक दुबला-सा व्यक्ति पैसेज में करवट के बल बेहोश सोया पड़ा था।

"सलीपर पर फ़ालतू यात्री बिठाना कोई नयी बात नहीं।" मैंने क्रुद्ध मन से सोचा। और उस दुबले व्यक्ति को फलांग कर 'टायलेट' की तरफ चला गया। दो-तीन मिनट बाद वापिस आया तो देखा कि वह उसी प्रकार बेसुध सोया था। जब उसके चेहरे की ओर ध्यान गया तो देखा कि माथे पर चोट का छोटा-सा निशान था। थोड़ा खून भी निकला था। ग़ौर से देखा--"अरे यह तो अटेन्डेन्ट है इस बोगी का," मेरे मुख से अचानक निकला। पास वाली बर्थ पर लेटी एक महिला ने पूछा- "क्या हुआ ?" "अटेन्डेन्ट बेसुध पड़ा है, शायद गिर गया है।" "क्या हुआ, क्या हुआ," तीन चार यात्री उठ बैठे। "अंकल क्या हुआ है इसे ?" एक युवक ने पूछा, "पता नहीं, यहीं गिरे हुए देखा है," मैंने उत्तर दिया। युवक ने उसे पकड़ कर सीधा किया उसका चेहरा एक दम सफ़ेद था। शक़ हुआ। मैंने नब्ज़ देखी नहीं थी। परन्तु शरीर अभी थोड़ा गर्म था। देखते-ही-देखते बहुत से यात्री इकट्ठे हो गए। किसी ने उसके मुंह पर पानी के छींटे मारे, कोई छाती दबाने लगा। इस अभिप्राय से कि शायद उसे होश आ जाये या सांस चल पड़े। "हार्ट अटैक ही लगता है--अच्छा भला तो था कुछ समय पहले" "दो बजे इसे देखा था, बाथरूम के बाहर वाली सीट पर बैठ कर सिगरेट पी रहा था।" एक यात्री ने कहा। थोड़ी ही देर में टी. टी. भी आ गया, उसके साथ ऐ-सी मकैनिक भी था। उसने घबराहट में पूछा "क्या हुआ है जगदीश को, दस मिनट पहले ही इधर आया था, कहता था किसी यात्री को जगाना है।"

सभी ने प्रयास किये उसे जगाने के। मगर.......होता तो जागता। कोटा स्टेशन दस मिनट में आने वाला था। टी. टी. ने अपने साथी से कहा, "कोटा स्टेशन को सूचित कर दो गार्ड से कहकर।" स्टेशन पर ट्रेन धीरे-धीरे रुक गई। बाकी डिब्बों से भी तीन चार अटैन्डेन्ट वहां पहुंच गये। स्ट्रेचर लाया गया और उसे उठा कर प्लेटफार्म पर रख दिया। फिर डाक्टर भी आ गया, अच्छी प्रकार जांच की। सिर हिला कर कहा "नो मोर"। स्टेशन मास्टर आ गया, पुलिस भी आ गई। कौन जानता है इसे, कहां का रहने वाला था?" स्टेशन मास्टर ने प्रश्न किया। एक ने उत्तर दिया, "रामपाल भी नैनीताल का ही है, वह इसका गांव जानता है।" रामपाल को बुलाया गया। उसने आश्चर्यचकित सब अता-पता बता दिया। मृतक जगदीश का बैग बोगी से उतारा गया। डाक्टर, पुलिस व अन्य कर्मचारी अपनी कारवाही में जुट गये।

बीस मिनट बाद ट्रेन को आगे के सफ़र के लिए रवाना किया गया। कौन रुकता है भला, किसी के लिये। यात्रियों को तो अपना सफ़र जारी रखना था-अटेन्डेन्ट जगदीश भी अपने सफ़र पर चला गया था--अकेला ही।

०००

33-ए. गांधीनगर, जम्मू

अंतर्मन

❑ *डा. बीना बुदकी*

टेंट के छिद्रों से टपकता पानी सांय-सांय करती ठंडी हवा, बेचारी ननसी कभी सामान इधर रखती तो कभी उधर, रात होते-होते बारिश थम तो गई पर टेंट में बैठने की जगह भी न बची थी। हर तरफ पानी-ही-पानी था। ननसी की समझ में नहीं आ रहा था कि बेटी कुसुमा को कहां सुलाए।

तभी बड़ी बेटी जिगा बोली, ''मां, दोनों सन्दूकों को जोड़कर इन्हीं पर सोते हैं।''

ननसी रूखा-सूखा, बचा-खुचा खाकर सिमटते-सिकुड़ते दोनों बेटियों के साथ संदूक पर लेट गई पर ननसी की आंखों में नींद कहां ? वह टुकुर-टुकुर टेंट के छिद्रों को देख रही थी। अतीत के 15 साल उसकी आंखों के आगे चलचित्र की तरह घूमने लगे.....

ननसी दुल्हन बन कर कश्मीर में महाराजगंज की हवेली में आई थी। हवेली की सजावट, कई दिनों तक चलती दावतों के दौर एवं कहकहों की गूंज को याद करके वह आज भी रोमाचिंत हो उठती। पति पंपोश को पाकर दुनियाजहान की खुशी पा ली थी। ससुराल में सभी का प्यार और फिर जिगा व कुसुमा को पाकर उसकी सब इच्छाएँ पूर्ण हो गईं। ज़िन्दगी में न कोई दर्द था न घुटन पर एकाएक कश्मीर घाटी में आतंकवाद के शोले भड़क उठे। चारों ओर आतंकवाद का साम्राज्य छा गया था। कोई किसी की खबर नहीं ले रहा था। सभी अपने-अपने परिवार को लेकर रातो-रात भागने का प्रयत्न कर रहे थे। अपने भरे-पूरे घर छोड़कर सभी अनजान मंजिल की ओर भाग रहे थे। पंपोश ने भी पत्नी एवं बेटियों के साथ भाग कर जम्मू में पनाह ली। जम्मू आकर कितनी जद्दोजहद के बाद टेंट मिला था। सरकार की ओर से हजार रुपए हर महीने सहायता के तौर पर मिलने लगे। जिससे तन ढकने व पेट की भूख मिटाने के लिए जुगाड़ बन गया। टेंटों में गर्मियों को लू और जाड़ों में सर्दी बार-बार कश्मीर की याद दिलाती। कश्मीर में गर्मियों की हवा मुरदे में भी प्राण फूंक देती, चिनार की ठंडी हवा मदमस्त कर देती। जाड़ों में कांगड़ी लिए खिड़की के पास बैठ कर बर्फ के नज़ारे देखते। पर यहां जम्मू में हालांकि खुले मैदान में सिर छिपाने के लिए सरकार द्वारा दिया गया टेंट था। पर कभी हवा के झोंके टेंट की रस्सियों को तोड़ देते तो कभी मूसलाधार बारिश से टेंट तार-तार हो जाता।

ननसी पति व बच्चों को देखकर सब दुख भूल जाती पर कभी-कभी जिगा की खामोशी दिल चीर कर रख देती। न पढ़ने की जगह न सोने की। सूरज निकलने से पहले ही शौच आदि से निपटना पड़ता और रात होने पर टेंट के बाहर नहाती। कभी-कभी जिगा लू के थपेड़ों से तंग आकर दिन में नहाने की जिद करती।

तब ननसी बड़े प्यार से समझाती, ''बेटी अब तुम बड़ी हो गई हो। हर जगह, हर वक़्त नहीं नहाते।''

जिगा रोने लगती फिर बोलती, ''चलो वापस अपने घर कश्मीर।''

यह सुनकर ननसी विचलित हो उठती, वह भी जिगा की चिल्लाहट के साथ-साथ रोने लगती। तब कुसुमा मां को प्यार से चुप कराती। जिगा की इस झुंझलाहट के पीछे पिता का दर्द भी था।

ननसी अकसर रातें करवट बदलकर काटती। एक रात पंपोश ने कहा, ''ननसी मैं तुमसे और बच्चों से बेहद प्यार करता हूं पर रूपा मेरी जिंदगी में फिर से आ गई है। उसने अब तक शादी नहीं की है। मैं रात को फैक्टरी के बजाए उसके घर में होता हूं......ननसी मुझे माफ करना.......मैं तुमसे झूठ नहीं बोल सकता।

ननसी को सुनकर ऐसा लगा मानो वक़्त रुक गया हो पर यह हकीकत थी।

विवाह पूर्व रूपा पम्पोश की दिलरुबा थी। दोनों विवाह करना चाहते थे पर रूपा का बाप उसकी कमाई से वंचित नहीं होना चाहता था। वह उसे आजीवन कुंवारी रखना चाहता था। ताकि वह बैठे-बैठे खा सके। पम्पोश की मां ने लाख मिन्नतें की, हाथ-पांव जोड़े पर रूपा का बाप टस-से-मस न हुआ।

एक दिन अचानक सुबह-सुबह रूपा का बाप दहाड़ें मार कर रोने लगा। आग की तरह पूरे मोहल्ले में यह बात फैल गई कि रूपा कहीं भाग गई पर पम्पोश के वहीं होने पर सभी ने सोचा कि रूपा ने अपनी जान दे दी है।

मकान बेचकर रूपा का बाप भी वहां से चला गया।

दरअसल, रूपा के पिता ने उसको जम्मू में चाचा के यहां बहाने से पहुंचा कर कैद कर दिया था। पिता के आने पर भी चाचा दिन-रात साए की तरह रूपा के पीछे लगा रहता। कई महीनों बाद मौका पाकर रूपा कश्मीर भाग गई। वहां पहुंचकर जब उसे पता चला कि पम्पोश की शादी दो दिन पहले ही हो गई तो वह बेहद दुखी मन से आखिरी बार पम्पोश की मां के पास गई।

पम्पोश की मां ने रो-रो कर सारा हाल उसे बताया कि उसके पिता ने क्या-क्या कहा.......पम्पोश अब भी उसे नहीं भुला पाया है सुनकर उसे खुशी भी हुई और दुख भी

हुआ। मां पम्पोश को रूपा के आने की खबर सुनाने ऊपर कमरे में गई। किन्तु इसी बीच रूपा वहां से चली गई।

ननसी ने पम्पोश के हर दुख में उसका साथ निभाया। कभी भी रूपा को लेकर विवाद नहीं किया, उसे पूरा विश्वास था कि वह प्यार से एक दिन पम्पोश को अपना बना लेगी।

धीरे-धीरे जिगा व कुसुमा के आगमन के पश्चात् पम्पोश भी बदलने लगा लेकिन टेंट में आकर जगह की तंगी के कारण पम्पोश कभी बाहर तो कभी बगल के टेंट में रहने वाले दीनानाथ के साथ सो जाता। उसकी रात की तड़प का भी उसे अंदाज़ा था पर बेटियों व खुले टेंट ने कई अंकुश लगा दिए थे। पम्पोश कभी-कभी मज़ाक में कह उठता, ''ननसी लगता है, अब कोई ढूंढनी ही पड़ेगी......जिस्मानी भूख शरणार्थी नहीं हुई है.......''

ननसी को कभी खुद पर तो कभी सरकार पर गुस्सा आता, जिसने भरे-पूरे घर से उठाकर टेंट में ला पटका था। वह सोचती कि शर्म हया छोड़ कर कैसे पम्पोश की बाहों में समा जाऊं ?

अक्सर पम्पोश बिना बात की लड़ाई करता। एक दिन झुंझला कर ननसी ने कह ही दिया, ''कहीं अतिरिक्त समय में नौकरी देख लो, मन भी लगा रहेगा और दो पैसे भी आ जाएंगे।''

पम्पोश तन की भूख से असन्तुष्ट मानसिक क्लेश लिए भटकता रहता एक दिन अचानक उसकी रूपा पर नज़र पड़ गई। वह भागता हुआ उसके पास पहुंचा। रूपा भी हैरान-सी एकटक उसे देखती रही। आसपास की गाड़ियों की आवाज़ ने उनकी तन्द्रा को भंग किया। फिर रूपा पम्पोश को घर ले गई।

वहां रूपा ने पम्पोश को बताया कि एक दिन मैं तुम्हारे घर गई थी वहां पता चला कि तुम शादी कर चुके हो, सो वापस चली आई..........पिता जी भी नहीं रहे अब यहीं घर में छोटा स्कूल व सिलाई सेंटर खोला है। जीने के लिए कुछ तो करना था।

उसके बाद रूपा स्कूल का कुछ कार्य पम्पोश को सौंपने लगी।

तन की भूख का मारा पम्पोश पिछले प्यार का वास्ता देकर रूपा की बाहों में समा गया। रूपा आखिर स्त्री ही तो थी, जीने की ललक, सुनहरे सपने.......सब फिर से खिल उठे पर रूपा के अन्दर का चोर ननसी का सामना करने से कतराता। ननसी जब भी पम्पोश को देखती, रूपा की धुंधली तस्वीर उसके साथ दिखाई देती। उसे पम्पोश की जिस्मानी महक में दूसरी 'बू' का एहसास होता। कई बार वह सोचती कि पम्पोश को ऐसा कहेगी, वैसा कहेगी, वहीं भगा देगी पर उसे देखकर खामोश हो जाती। मन-ही-मन सोचने लगती, ''क्या ज़रूरत है कुछ कहने की ? खींचतान के यदि रूपा से पम्पोश को ले भी आई, तो क्या फायदा, वह अगले दिन फिर चला जाएगा.........अपने विश्वास को कमज़ोर मत होने दो, आखिर पत्नी तो तुम ही हो, रूपा नहीं।''

अंतर्मन में उठते आवेगों में ननसी घंटों बिता देती। कई दिन की कशमकश के बाद आखिर ननसी ने तय किया कि जिगा, कुसुमा की शादी हो जाए, फिर पम्पोश को दिल जहां चाहे रहे।

अक्सर सुनने को मिलता कि शरणार्थियों को वापस कश्मीर भेजा जाएगा। ननसी के दिल में टीस-सी उठती। घंटों सोच में डूबी रहती कि आखिर मैं किस घर जाऊं.........पम्पोश बंट चुका है, मैं अकेले कहां जाऊं ?

उधर रूपा अपने पम्पोश को पाकर, सब कुछ भूलना चाहती थी। कई बार दबे होठों से उसने पम्पोश से एकसाथ रहने की बात कही भी पर पम्पोश ननसी की मानसिकता को अच्छी तरह जानता था कि वह जिगा और कुसुमा की शादी तक ऐसा प्रस्ताव कभी मंजूर नहीं करेगी।

जिगा न जाने कब से मां को बुला रही थी। मां........मां......सुन कर ननसी की तन्द्रा टूटी, जिगा चिल्ला रही थी, "मां, तुमने सुना अब सरकार टेंट की जगह मकान दे रही है.......अब हम कब जाएंगे उस पक्के मकान में ?"

ननसी के चेहरे पर न खुशी थी न गम था। वह मन-ही-मन सोच रही थी कि यहां टेंट की चारदीवारी, वहां ईंट-पत्थर की बनी दीवारें..........पक्का मकान मिले या टेंट ननसी सिर्फ इसी प्रश्न में उलझी रहती कि मेरा पम्पोश मेरा हो सकेगा या नहीं। अंतर्मन की औरत कहती, "होगा, ज़रूर होगा।"

०००

मकान न. 73, गली नं. 7
मनोरमा विहार कालोनी
पाट्टा बोड़ी - जम्मू

सपना

❑ *चित्रेश*

हितराम बेहद उत्तेजित था.........नहीं बल्कि यह उत्तेजना की अनुभूति थी, जो सपने में गुस्सा हो जाने पर उसके पूरे वजूद में अकस्मात् उतर आई थी.........कसी हुई मुट्ठियाँ.........पिसते हुए दांत.........और एकबारगी वह उठ बैठा था.........। मध्य सितम्बर का साफ आसमान.........चन्द्रमा काफी ऊपर चढ़ आया था कुछ खोए-खोए अंदाज में। छप्पर के अंदर तक मजे का उजास था, खामोशी में जकड़ा हुआ सा। बगल की झिंगली खटिया पर पत्नी अस्त-व्यस्त सोई पड़ी थी। आगे वाली चारपाई पर धुस्सी चादर के बीच लपटे-झपटे बेखबर दोनों बच्चे.........पहले तो हितराम समझ ही न पाया कि माजरा क्या है.........वह क्यों और किस पर सुलग रहा है ?

तभी दूर खेतों की तरफ सियार हुआए.........भीतर कोठरी में झींगुर चिनचिनाने लगे.........आहिस्ता-आहिस्ता वह सचेत होने लगा.........और फिर दिमाग में बिजली-सी कौंध गई कि अरे यह तो.........आखिर मैंने भी देख लिया सपना। बस, फिर तनाव की तल्खी का अहसास एक फड़कती उमंग में बदल गया। उसका मन हुआ, अभी दौड़कर श्यामलाल और तेजनाथ को जगा दे--''यारो। वाकई गजब की चीज़ थी। उसके असर से मुझे भी दिख ही गया सपना। लो अभी और इसी वक़्त सुन लो.........।''

यह सपने का वाकया कुछ यूं शुरू हुआ था.........आज हितराम को देर से छुट्टी मिली थी। छत पड़ने वाले दिन अक्सर ऐसा हो जाता है। बाज दफा तो रात के एक-डेढ़ बज जाते हैं। बिना छत लदे छुट्टी नहीं मिल सकती। इसमें दिहाड़ी जरूर दुगनी बनती है, मगर ऐसा थका देने वाला काम होता है कि अगले एक-दो रोज मजदूरी पर निकलने की हिम्मत नहीं पड़ती। वैसे आज गनीमत थी। सात बजते-बजते काम खत्म हो गय़ा था। मगर तब भी नस-नस ढीली पड़ गयी थी। इसलिए चकरोड वाला साफ-सुथरा लंबा रास्ता छोड़कर उसने पतुरिया के ताल के किनारे वाली छोटी राह पकड़ ली थी।

यह निकास कुछ उबड़-खाबड़ है--घास और छोटे झंखाड़ों से भरी हुई। उसे जल्दी घर पहुंच कर खटिया पर पड़ जाने की चाह थी, तभी उसने यह रास्ता पकड़ लिया था। वह श्याम लाल की रहट तक पहुंचा था कि चेहरे पर टार्च की रोशनी पड़ी-''कौन.........?''

वह अचकचाकर रूक गया। आवाज़ पहचानी-सी लगने के बावजूद उससे कुछ कहते न बन पड़ा। उधर वालों ने तुरन्त पहचान लिया-''यार, अपना हित्तू है.........आ जा भाई तेरी ही कमी थी.........।''

टार्च की रोशनी मेंड़ पर आ पड़ी थी। अचानक ही तेजनाथ और श्यामलाल का मिलना उसके लिए भी सुखद था। उसकी थकान भरी देह में अनजाने ही एक चैतन्यता दौड़ गई और वह लपककर मित्रों के पास पहुंच गया। तेजनाथ बताने लगा--''यार इस बार अंग्रेजी की बोतल लाए थे। तुम्हें तलाश कराए तो मालूम हुआ-बहुत रात गए लौटोगे। सारा उत्साह ठंडा पड़ गया, खैर.........तुम मिल गए.........मज़ा आ गया.........।''

वे रहट के पास बनी कोठरी में आ गए। श्यामलाल ने ढिबरी जला दी। बाल्टी में पानी पहले से रखा था। तीनों बैठ गए। श्यामलाल ने पैकेट खोलकर बोतल निकाली। कुछ क्षण वह सुन्दर-सी रोबोली बोतल को देखता रहा, फिर इत्मीनान से सील तोड़कर जस्ते के लोटे में करीब चौथाई बोतल खाली कर दी और अंदाज़ से पानी मिलाया। तीन कुल्हड़ों में शराब डालने के बाद उसने तेजनाथ की तरफ देखा। तेजनाथ नमकीन का पैकेट फाड़ चुका था। इसे सब के बीच रखते हुए उसने दोस्तों को इशारा किया-''लो यारो.........।''

छोटी-सी कोठरी अंग्रेज़ी शराब की मस्त महक से गमक उठी थी। इससे उनके अंदर की प्यास तेज हो गई थी। तीनों ने नमकीन की एक-एक फांकी मारी। ललक के साथ कुल्हड़ उठाए। जाम टकराने की रस्म पूरी करके उन्होंने एक सांस में कुल्हड़ खाली कर दिये। जल्दी ही दूसरा जाम तैयार हो गया। नमकीन फांकते हुए इसे भी उन तीनों ने खाली कर दिया। इसके बाद कुछ देर तक वे इधर-उधर नई पुरानी बातें करते रहे। श्यामलाल फिर से कुल्हड़ में शराब ढालने लगा तभी हितराम ने नमकीन चबाते हुए तेजनाथ से पूछा--''यार मिश्रा, यह बताओ, इस दफे अंग्रेजी माल किस खुशी में........''हित्तू''। पहले तू यह बता, मैं तेज से मिश्रा कब हो गया ?''

तीनों हंस दिए। कुल्हड़ भरे जा चुके थे। तेजनाथ ने कुल्हड़ से एक घूंट लेकर कहा--''भाई लोगो, हम साथ पढ़ने गये, खेल में भी जोड़ीदार रहते थे। हित्तू तू तो सातवीं कक्षा के बाद घर बैठ गया था। श्यामू भी दसवीं के आगे नहीं जा सका। एक तरह से यहीं से हमारे रास्ते अलग होने लगे थे। मगर सोचो यारो, चाहे मैं कालेज में पढ़ता था, या जब से चाचा के साथ मशीनरी स्टोर का काम देख रहा हूं-कभी मेरे व्यवहार में किसी किस्म का दुराव या फरक पाए ?''

''यार, तू तो बुरा मान गया।''--हितराम ने एक सांस में कुल्हड़ खाली करके सफाई दी-''मेरे मुंह से ऐसे ही निकल गया था।''

''सो मुझे पता है, बुरा काहे का मानना।''--तेजनाथ ने कुल्हड़ में बची शराब गटकने के बाद हितराम को बीड़ी सुलगाने का इशारा किया।

हितराम ने ढिबरी की लौ से जलाकर बीड़ी उसकी तरफ बढ़ा दी। तेजनाथ ने एक सूटा लगाया और धुआं उगलते हुए बताने लगा--"इधर पिछले महीने अपनी दुकान को जल निगम से नल की सप्लाई का काम मिला है। जे.ई. को पटाकर गांवों में नल लगाने का ठेका भी मैंने ले रखा है। ठेके का पहला हिसाब मिला तो अच्छी कमाई दिखी। बस, मन बन गया कि गांव चलकर अंग्रेज़ी मेम का मजा लिया जाए........"

वह दो फूंक मार कर बीड़ी फेंकने वाला था, तभी हितराम ने उसके हाथ से बीड़ी ले ली। श्यामलाल कुल्हड़ों में शराब डाल चुका था और लोटे में नया माल तैयार कर रहा था। हितराम ने अधजली बीड़ी से एक जोरदार सूटा लगाकर टूट पड़ने के अंदाज में कुल्हड़ एक घूंट में खाली कर दिया। उसका शुरू से अंत तक पीने का यही कायदा है। जब कि पहली बार को छोड़कर तेजनाथ चुस्कियां लेकर पीता है। श्यामलाल का मामला बेढंगा है--जब जैसा मन हुआ। इस बार उसने एक छोटा घूंट लिया और तेजनाथ की तरफ देखा--"यार, यह अंग्रेज़ी मेम है मज़ेदार। तुम तो बराबर इसका मज़ा लेते होगे।"

"नहीं भाई, कसम है जो तुम दोनों को साथ लिए बगैर कभी हाथ भी लगाया हो।"

"सच तेजू, तूने कभी अकेले नहीं ली।" हितराम के गहरे सांवले चेहरे पर गहरी जिज्ञासा थी।

श्यामलाल की नज़रें भी उसी पर टिकी थीं। उसने एक चुस्की लेकर नमकीन चबाते हुए कहा-"पक्की बात है, भाई विश्वास कर। हां, एक बार सपने में ज़रूर मैंने अकेले चढ़ा ली थी........।"

हितराम और श्यामलाल कुछ इस अंदाज़ में मुस्कुराए-जैसे उसे चढ़ गई हो। तेजनाथ भी उनकी आंखों में झांकते हुए मुस्कुरा उठा, फिर कुल्हड़ से एक घूंट लेकर समझाने के अंदाज़ में बोला-"वो बात नहीं है.........देखो मैं, पूरा वाक्या बताता हूं।"

एक क्षण के लिए बात अधूरी छोड़कर उसने पैकिट से लेकर नमकीन फांका, फिर मुंह चलाते हुए बताया-"वास्तव में सपने में मेरी लाटरी निकली थी। इनाम इतना बड़ा था कि पांच-पांच सौ के नोटों से पूरी अटैची भर गई। इस पैसे से मैंने पाइप ढालने की फैक्टरी डाल ली। मेरी फैक्टरी का माल चल निकला..........पैसा बरसने लगा.......इसके बाद मैंने क्या किया जानते हो ?"

"बिना बताए कैसे जान सकते हैं ?"-श्यामलाल ने तपाक से सवालिया जवाब देकर नमकीन उठा लिया।

हितराम बीड़ी सुलगा रहा था। तेजनाथ ने एक बीड़ी अपने लिए भी जलवा ली और एक फूंक मारकर बात आगे बढ़ाई-"हां तो इसके बाद मैंने एक विदेशी कार खरीदी। इसका उद्घाटन करने शहर के सबसे भव्य होटल में पहुंचा। बढ़िया शराब पी। लजीज़ डिनर लिया।

मुझे मजे का नशा हो गया था, सो रात होटल में ही बिताने का निश्चय किया। मौज-मस्ती के लिए एलबम से छांटकर एक हूर-सी छोकरी बुक कर ली........।''

उसने कुल्हड़ से आखिरी घूंट लेकर बीड़ी का जोरदार सूटा लगाया और धुआं उगलते हुए समापन की तरफ आया-''मैं कमरे के अंदर लड़की के इंतज़ार में उतावला हो रहा था, तभी रेशमी परदा हटाकर वह अंदर आ गई। मैं बांहें फैलाए उसकी तरफ बढ़ा। मगर शरीर का हिलना था कि नींद टूट गई और तब सब कुछ गायब.........।''

खाली कुल्हड़ों पर नज़र डालते हुए तेजनाथ श्यामलाल की तरफ मुखातिब हुआ-''यार, ऐसा कोई मजेदार सपना तुमने भी देखा ही होगा........हमें भी सुना डालो। पर हां, पहले एक-एक जाम और हो जाए........।''

श्यामलाल लोटे से कुल्हड़ों में शराब डालने लगा। हितराम और तेजनाथ मस्ती के साथ बीड़ी पीते रहे--एकदम बेफिक्र अंदाज में किसी दूसरी दुनिया में खोए हुए। आखिर श्यामलाल ने चेताया-''यारो जाम तैयार है।''

तेजनाथ ने बीड़ी कोठरी में फेंक दी। कुल्हड़ उठाने के पहले उसने स्वयं तो नमकीन उठाया ही, उन दोनों को भी उकसाया-''इसे भी लेते रहो, अभी काफी बचा है।''

हितराम और श्यामलाल ने अपने-अपने कुल्हड़ खाली करके रख दिए और नमकीन चबाने लगे। तेजनाथ की चुस्कियां चलती रहीं। कुछ समय बाद उसने श्यामलाल को फिर से सपना सुनाने की याद दिलाई-''हाँ, अब शुरू हो जाओ।''

''तेजनाथ भाई। तुम्हें पता ही है, मेरे बाप ने मुझे ग्यारहवीं कक्षा में भर्ती कराने से मना कर दिया था। मैंने खेती शुरू की, लेकिन बाहर की आमदनी थी नहीं। खेती भी अब पैसा मांगती है, आखिर हारकर कपड़े की दुकान पर सेल्स मैनी.........।''

''गाथा नहीं गा श्यामू।''-हितराम ने सचेत किया-''कोई मज़ेदार सपना सुनाना है.........।''

''उसी तरफ आ रहा हूं........वास्तव में मुझे सपने में दौलत किस तरह हासिल हुई-यह नहीं याद आ रहा है। पर एक मोटी रकम को मैंने बाप के हवाले किया था..........।'' -श्यामलाल ने आगे बताया-''इस पैसे से बैलों की नई जोड़ी खरीदी गई। रहट की जगह नलकूप लगाया गया। खेती में अच्छी पैदावार होने लगी। दरवाज़े पर दो मुर्रा भैंस भी बंध गई........।''

इस बार शराब डालने का काम हितराम ने किया। श्यामलाल ने अपने कुल्हड़ की शराब चढ़ाकर नमकीन उठा लिया। मुंह चलता रहा, सपने की बातें भी..........''लक्ष्मी का आगमन हुआ तो टूटा-फूटा खपरैला घर रौनकदार हो गया। मां की वर्षों पुरानी खांसी दब गई। पत्नी

गौने के समय जैसी गुजहर हो आई। बम्बइया प्रिंट की साड़ी पहन कर चलती तो छम्मक-छल्लो लगने में बस एक पायल की कसर दिखती। एक रोज़ मैंने उसे पायल भी ला दी.......।''

एक नज़र तेजनाथ ओर हितराम पर डालते हुए उसने सपना पूरा किया--''यहीं घपला हो गया यारो, पत्नी पायल छुमकाती जैसे ही दो कदम चली, मेरी नींद खुल गई...........।''

''सपने की माया ऐसे ही दगाबाजी करती है।''-कहकर तेजनाथ ने हितराम से अपने लिए बीड़ी सुलगवाई। बीड़ी का सूटा लगाकर उसने बोतल की तरफ इशारा किया-''अभी कितनी बची है ?''

''एक चौथाई माल बचा है।'' श्यामलाल ने बताया।

''एक दौर और हो जाए।'' तेजनाथ ने कहा।

यह आखिरी जाम चल रहा था। इस बार तेजनाथ ने हितराम को उकसाया-''यार, तुम भी सुनाओ।''

''क्या ?'' उसने करीब-करीब चौंककर पूछा।

''हमारी तरह कोई सपना।''

वह सोच में पड़ गया......सुबह से शाम तक हाड़-तोड़ मेहनत और रात में घोड़े बेचकर सो रहना, पिछले बारह सालों से यही हो रहा है। मजदूरी के पैसे पहले मां के हाथ में रख देता था। अब पत्नी सारी जिम्मेदारी देखने लगी है। उसे लगा कि उसने फटेहाली को पक्की नियति मान लिया है, तभी आज तलक खुशहाली भरा कोई सपना नहीं देखा..........।

श्यामलाल ने उसका कंधा हिलाया-''कहां खो गये ?''

''मुझे अचरज हो रहा है, मैंने वर्षों से कोई सपना नहीं देखा।''

तेजनाथ ने कुल्हड़ से एक घूंट-भर कर नशे से बोझिल आंखें मिट्टी के माधव बने हितराम का टिका दिया-''ऐसा कैसे हो सकता है ? बिना सपनों के भी कहीं ज़िंदगी होती है।''

''अब जो भी हो मैं झूठ नहीं बोल रहा।'' हितराम के कहने में एक दर्द भरी विवशता थी।

अब तक तीनों को नशा चढ़ गया था। उनकी बातचीत में एक ठहराव भरी बोझिलता आने लगी थी। वे अपने-आप में खोए जा रहे थे। इसी समय तेजनाथ ने बोतल हितराम की तरफ बढ़ा दी-''यार, इसे तू लेते जा......लगा के सो जाना.......ज़िंदगी में सपना देखना जरूरी होता है........भगवान ने चाहा तो आज ज़रूर आएगा एक सुन्दर-सा सपना........।''

हितराम को सपना न देख पाने का झटका काफी तेज लगा था। वह पता नहीं कैसे घर पहुंचा। इतना याद है कि बोतल में जो-थोड़ा-सा माल बचा था, उसमें जरा-सा पानी मिलाकर गटागट पी गया था। पत्नी ने जो परोस दिया, वही जैसे-तैसे खाकर चारपायी पर पड़ गया था..............

......उसे लगा, वह थककर चूर हुआ घर लौट रहा है। रास्ते में उसे एक बड़ी-सी डलिया दिखी-साफ-साफ कपड़े से ढकी-मुंदी। उसने जिज्ञासा से कपड़ा हटाया, अचानक ही उसकी आंखों में गजब की चमक-सी आ गई। थकान भरे जिस्म में तरंग का संचार हो आया और वह दौड़ता हुआ घर पहुंच गया। पत्नी और बच्चों को बुलाया, फिर सबके सामने डलिया पर ढका कपड़ा हटा दिया। बच्चों की आंखें खुली-की-खुली रह गई-इतना सारा किस्म-किस्म का खाना......बाप-रे-बाप.....पांच साल का छोटू और आठ साल की मुनिया डलिया पर झपट पड़ी। पता नहीं कैसे डलिया पर ठोकर लग गई और सब कुछ धूल-मिट्टी में बिखर गया.......और वह बच्चों की छीना-झपटी वाली हरकत के लिए सिर से पैर तक गुस्से से दहकता, पनपनाकर उठ बैठा......

सपना देखने की मिठास में डूबते-उतराते उसे लगा कि उसका हलक प्यास से सूख रहा है। उसने चारपायी के पास औंधा पड़ा जस्ते का लोटा उठाया और बाल्टी से पानी निकालकर पूरी हौंक के साथ पी गया। सियार अब भी हुआ रहे थे.......बीच-बीच में झींगुर भी चिनचिना उठते.......वह फिर खटिया पर आ बैठा था.......धीरे-धीरे उसे सपने की नवैयत समझ में आने लगी थी......। इसके साथ ही मन में उठी खुशी की उमंग एक तिलमिलाहट भरी सोच में बदल गई-सपना आया भी तो रोटियों का- गलीज औक़ात का अहसास कराने वाला।

एकबारगी उसके मन में आया-हलक में उंगली डाले और ऐसा बेहूदा सपना दिखाने वाली शराब का एक-एक बूंद निकाल बाहर करे........मगर इसी सोच में उसे सुस्ती आ गई और वह खटिया पर लुढ़क गया।

०००

पो. आ. जासापारा

गोसाई गंज-228119

सुलतानपुर (उ० प्र०) मो० 09450143544

बुढ़ापे की सीढ़ी

❑ *मनोज 'निश्चिंत'*

जब भी कोई पर्व आता, नेकराम अपनी बूढ़ी आंखों से राह ताकता रहता। कहीं उसका बेटा और बहू तो नहीं आ रहे। बेटे को याद करके पत्नी पारो को सांत्वना देता, ''पारो, चिंता मत कर! हो सकता है बेटे को कोई ज़रूरी काम पड़ गया हो, नहीं आ सका घर!'' इसी प्रकार पिछले तीन सालों से बेटे और बाप के मध्य दूरी बनी हुई थी! न बेटे का कोई पता था और न ही उसने घर वालों ने खबर ली! बूढ़े मां-बाप सोचते हैं, यदि उनके बेटे नौकरी अथवा कामकाज घर से बाहिर करते हों, फिर भी किसी बड़े दिन पर घर आना स्वाभाविक है। इसी बहाने, पर्व इकट्ठे मनाने का मज़ा दोगुना हो जाता है।

नेकराम गांव सुनेतर का निवासी है। उसने बड़ी मेहनत से बेटे को पढ़ाया। जब उसने पारो से शादी की थी, तब दोनों उम्र में छोटे थे और गांव में न सड़क थी, न स्कूल था। पिता की मृत्यु छोटी उम्र में होने के कारण, काफ़ी कष्ट उसने झेले थे। फिर भी थोड़ा पढ़ लिखकर, उसने खेतीबाड़ी को ही अपनी जीवन रेखा मान लिया था। घर में पैसे का अभाव था। दो जवान बहनें थीं। उनके हाथ पीले किये और जब पारो की गोद हरी हुई तो घर में खुशी का वातावरण था। कई सपने संजोए थे उसने। बेटे को बुढ़ापे की सीढ़ी मानकर उसने उसे प्यार से पाल, बड़ा किया और फिर स्कूल में दाखिल करवाया। गांव में स्कूल उन्हीं दिनों खुला था। बड़े चाव से उसे कंधे पर उठाकर स्कूल छोड़ता और अध्यापक को कहता, ''मास्टर जी, मेरे लाडले का तनिक ध्यान रखना जी, शरारती है और कहीं दूसरे छात्र इसे तंग न करें जी।'' वह हाथ जोड़े अध्यापक के पास जाता और बेटे की पढ़ाई की जानकारी लेता रहता। उसने बेटे का नामकरण भी, लोगों को पूछ-पूछ कर किया था। ''संजीव''। उन दिनों गांव में ऐसा नाम एक नई चीज़ थी। शहरों-कसबों में ही ऐसे नाम हुआ करते थे। कभी-कभी जब फुर्सत मिलती, तो पारो से बातों-बातों में नेकराम कहता, ''हम गंवार लोग अधिक सोचने की क्षमता कहां रखते हैं। हमारी सभ्यता, हमारा रहन-सहन, हमारा खान-पान शहरों से कितना भिन्न है। गांव का जीवन सादा है।''

पारो उसकी बात को काटते हुए कहती, ''भले ही हम गांव के हैं, परन्तु शहरी वातावरण से कुछ सीख कर, अपने जीवन में परिवर्तन अवश्य ला सकते हैं। अत: हम बेटे को आधुनिक सोच वाला व्यक्ति बनाएंगे।'' नेकराम को बात अच्छी भी लगी और उसने

संजीव को खूब पढ़ाने का मन बना लिया। नेकराम कहता, "देखना, हमारा बेटा बड़ा अफसर बनेगा। हमारे बुढ़ापे की सीढ़ी बनेगा।" पारो, यह सुनकर गर्व महसूस करती। बेटा बड़ा होने लगा। उसका एक सहपाठी 'हुकमा' उसके साथ ही स्कूल जाता था। दोनों इकट्ठे पढ़ते और खेलते थे। अब दोनों में एक-दूसरे से आगे बढ़ने की प्रवृत्ति भी जागने लगी। संजीव पढ़ने में तेज़ था और हुकमा को पछाड़ देता। हुकमा का बाप गांव का सरपंच था और उसका काफी दबदबा था। मास्टर जी हुकमा को आगे करने की चेष्टा करते, परन्तु संजीव की बुद्धिमता के आगे बेबस थे।

सुनेतर से आठवीं कक्षा पास करने के पश्चात्, जब हायर सैकेंडरी स्कूल रामनगर में दाखिला लिया तो काफ़ी नये चेहरे मिले। संजीव वहां भी आगे रहा और प्रशंसा बटोरता रहा। हुकमा को जलन होती कि संजीव गरीब होने के साथ-साथ, पढ़ाई में आगे है। ट्यूशन के बिना ही अच्छे अंक प्राप्त करता है। दसवीं की परिक्षा में संजीव की 'डिसटिंक्शन' आई थी। पारो ने पूरे गांव में पताशे बांटे। नेकराम बड़ा खुश था। उन दिनों ओवरसियर जे. ई. बनना, सौभाग्य माना जाता था और दसवीं के बाद ट्रेनिंग मिल जाती थी। किसी ने नेकराम को सलाह दी, "भई, जे. ई. के फार्म भरवा दो।" बस फिर क्या था। फ़ार्म भरने के दो महीने बाद गांव में खबर फैली कि, संजीव का नाम ट्रेनिंग में आ गया है। लोग बधाई देने आने लगे। शहर से भी कुछ दुकानदार घर आए और खुशी प्रकट करने लगे।

नेकराम बेचारा भाग्य सराहने लगा। उसने जो सपने देखे थे। उसे लगा, एक-एक करके पूरे हो जाएंगे। उसकी प्रतिज्ञा रंग लाने लगी थी। वहीं पड़ोसी खामोश थे। शायद खुशी कम थी, उन्हें। जम्मू के पालीटेकनिक कालेज में संजीव का दाखिला हुआ। रहने की समस्या शहर में विकराल रूप धारण करती है। कुछ दिन सराय में रहा। ढूंढने पर एक कमरा किराये पर लिया। तीन सौ रुपये किराया था और शर्त थी कि मालिक के दो बच्चे भी मुफ़्त में पढ़ाने थे। संजीव घर का सदस्य बनकर वहां रहा और कालेज में भी उसने अपनी छाप छोड़ी। वह पढ़ाई पूरी करके ही घर आया। उसका मालिक मकान भी, संजीव का घर बाहिर देखना चाहता था। कहने लगा, "संजीव बेटे, मैं भी तुम्हारे साथ चलूं! जम्मू की चकाचौंध से बाहर, कुछ दिन गुज़ारना चाहता हूं।"

संजीव भला ना कैसे करता। मन-ही-मन सोच भी रहा था कि, कहीं हमारे कच्चे मकान देखकर हमारी हंसी न उड़े। फिर भी उसने साथ ले जाने की हामी भर दी। दोनों रामनगर के बाज़ार में घूमे। फिर गांव सुनेतर की गाड़ी में बैठकर घर पहुंचे। माता-पिता को जहां बेटे की पढ़ाई पूरी होने पर, खुशी थी वहीं मालिक मकान को घर में देखकर फूलें नहीं समा रहे थे। नेकराम और पारो ने उसका आदर-सत्कार किया। मक्खन, घी और कलाड़ी का भोजन परोसा। सौगात के तौर पर देसी राजमाश का थैला भेंट किया, ताकि बेटे का बोझ तनिक हल्का पड़ जाए। परन्तु मालिक मकान की कुछ और ही मर्ज़ी थी। वह संजीव को अपना रिश्तेदार बनाने के चक्कर में था। शरीफ़ और मेहनती लड़के कहां मिलते हैं, आसानी से। संजीव की

नौकरी भी लगने वाली थी। जाते-जाते मालिक मकान कह कर गया था, ''नेकराम जी, संजीव को हम सभी जान-पहचान गए हैं। उसका स्वभाव अच्छा है। हम सब की इच्छा है कि इसे अपना संबंधी बनाएं। और नौकरी इसकी हम लगवा देंगे। हमारी जम्मू में जान-पहचान काफ़ी है। आप चिंता न करें।'' उस समय नेकराम कोई उचित निर्णय नहीं ले पाया था परन्तु पारो शहर से जुड़ना चाहती थी, इसी बहाने।

मालिक-मकान के बाद में पत्र आते रहे, जिसमें शादी की बात ही प्राय: लिखी होती थी। आखिर, संजीव भी राज़ी हो गया था, जम्मू में शादी करने के लिए। शहर की रौनक, सबको आकर्षित करती है और वह तो तीन वर्ष रहा था जम्मू में। बड़ी बात संयोग की है। संजीव की सगाई हुई। शादी भी हो गई। छ: महीने तक सब ठीक रहा, परन्तु उसके बाद बहू के तेवर बदल गए। कहने लगी, ''मैं शहर में पली हूं। गांव में मैं 'एडजस्ट' नहीं हो सकती। मैं जम्मू में ही रहूंगी।' मां-बाप का सहारा, संजीव उलझन में था। क्या करे? उसने पत्नी को समझाया कि जब गांव में कुछ महीने बीताने के बाद हम शहर में कुछ दिन रह आएंगे। जैसा सभी करते हैं। परन्तु उसके हठ ने संजीव को, बूढ़े मां-बाप से दूर कर दिया। संजीव की नौकरी भी नगरोटा में लग गई और उसने नगरोटा में क्वार्टर ले लिया। सीधे लोग कहां बस का सफ़र करके, मिलने आते हैं ? एक वर्ष तक संजीव, बीच-बीच में गांव आता रहा, परन्तु उसके पश्चात्, उसने भी गांव से मुंह फेर लिया। पत्नी की नोकझोंक असहनीय थी। वह कहती, ''अब हमारा घर यहीं है। अपने मां-बाप को यहीं बुला लो। गांव में क्या रखा है ?'' परन्तु गांव के लोग जगह-ज़मीन, घर और पशुओं को अधिक महत्त्व देते हैं। वह जीते जी, घर नहीं छोड़ते। परिस्थितियां चाहे कैसी भी हों। परिणाम-स्वरूप, तीन वर्ष से संजीव, अपने घर नहीं जा सका था। चाहे मन भी किया हो जाने का, परन्तु झगड़े के डर से, कुछ नहीं कर पाया। नेकराम के पड़ोसी उसे पूछते, ''ले लिया शहर का मज़ा। भई, गांव में ही हमें रिश्ते, रास आते हैं।'' पारो और नेकराम चुप रहते क्योंकि उन्हें बुढ़ापे की सीढ़ी टूटती नज़र आ रही थी।

ooo

अदृश्य शक्ति

❑ *यशपाल शर्मा 'निर्मल'*

आज सारा दिन टेंशन से भरा गुज़रा। कार्यालय में सौ तरह के काम। आफिस में क्लर्क से हुई तकरार ने मेरे मन को झकझोर कर रख दिया था। पांच बजे छुट्टी के बाद घर आया, चाय पी और मार्केट में रोजमर्रा की चीज़ें लेने चला गया। एक घंटा इंटरनेट पर माथापच्ची की मगर मन शांत नहीं हुआ। घर लौटा तो खाना बनाने को जी नहीं किया। थोड़ी-सी नमकीन खाया, पानी पीया और पढ़ने बैठ गया। करीब एक बज चुका था। बदन पूरी तरह चूर हो चुका था लेकिन नींद का कोई नामोनिशान नहीं था। मजबूर होकर लाइट बंद की और विस्तर पर लेट गया। अचानक मन में दो कविताएं फूट पड़ीं सोचा सुबह लिख लूंगा लेकिन नहीं वह बार-बार मन में तूफान मचाने लगीं। आखिर लाईट ऑन करके उन्हें कागज़ पर उकेरना ही पड़ा।

करीब-करीब दो बजने वाले थे। मैं फिर आटे की अधभरी बोरी की तरह बिस्तर पर लुढ़क गया। अचानक नल से पानी टपकने की आवाज़ मेरे कानों में पड़ी। मैं घबरा गया। इतनी रात को कौन पानी के साथ छेड़छाड़ कर रहा है.......? मकान मालिक तो नौ-दस बजे तक सो जाते हैं। फिर मैंने सोचा हो सकता है नल खुला रह गया हो और अभी-अभी पानी आया हो जिसकी आवाज़ मुझे सुनाई दे रही हो। मैं अभी इसी उधेड़बुन में था कि एकदम जोर-जोर से थप-थप की आवाज़ें ताबड़तोड़ आने लगी जैसे कोई बड़ी चादर या दरी को धोने के लिए पटक रहा हो। मेरी बेचैनी और बढ़ गई। अब मुझे घबराहट और डर एकसाथ लगने लगा। मन में भूत-प्रेतों की बातें घड़ी की सुइयों की तरह चक्कर काटने लगीं। कुछ देर बाद सब आवाज़ें बंद हो गई। आवाजें बंद हो जाने पर मैं और भी सहम-सा गया। और कान लगाकर सुनने लगा कुछ अजनबी-सी आवाज़ें......किसी का वार्तालाप......मेरे रौंगटे खड़े हो गए।

अचानक मुझे लगा कि किसी बाहरी शक्ति ने मुझे जकड़ लिया है। जैसे किसी की आत्म को पत्थर के बुत्त में कैद कर दिया गया हो। मैं छटपटाने की निरर्थक कोशिश करता हूं, लेकिन हिल भी नहीं पाता। मोबाइल फोन जो मेरे सिरहाने पड़ा था। सुखमणी अक्सर देर रात को फोन करती है, इसलिए मैं मोबाइल अपने सिरहाने रखता हूं, ताकि अगर सौ गया तो मोबाइल की रिंगटोन सुन कर उठ जाऊं। इस अजनबी शहर में सुखमणी के बिना मेरा और कोई नहीं था। मैं मोबाइल की तरफ हाथ बढ़ाने की चेष्टा करता हूं ताकि सुखमणी को फोन करके बता सकूं कि मैं किसी प्रेत की छाया में आ गया हूं, अगर कुछ कर सकती हो

तो करो। लेकिन........यह क्या....? मैं जैसे ही हाथ मोबाइल की तरफ बढ़ाता हूं मेरा हाथ अकड़ जाता है। हाथ जहां था वहीं 'स्टैच्यु' हो गया। अब मेरे पास कोई चारा नहीं था। मुंह से चीखने की कोशिश करता हूं तो आवाज़ निकलती ही नहीं। मुझे याद आया बचपन में दादा जी बताया करते थे 'हनुमान चालीसा' और 'गायत्री मंत्र' पढ़ने से दुष्ट आत्माएं पास नहीं फटकतीं।

मैंने एकदम मन-ही-मन गायत्री मंत्र पढ़ना शुरू किया लेकिन कोई फायदा नहीं हुआ। पहले बार को असफल होते देख मैंने हनुमान चालीसा पढ़ना शुरू किया "जय हनुमान ज्ञान गुण सागर......." सारा हनुमान चालीसा पढ़ दिया मगर मैं आज़ाद नहीं हो पाया। मेरा शरीर पहले से भी ज़्यादा अकड़न और जकड़न महसूस करने लगा।

अब मैंने शारीरक जोर अजमाइश करनी शुरू की ताकि मैं मुक्त हो सकूं। लेकिन......यह क्या........? मेरा शरीर एकदम ऊपर छत की तरफ उठने लगा। कमरे में पढ़ी सारी चीजें बर्तन, गैस चूल्हा, गैस सिलेंडर, किताबें, स्टडी टेबल, वॉटर कूलर, देवी-देवताओं की तस्वीरें सब कुछ मुझे स्पष्ट दिखाई दे रहा था। धीरे-धीरे उस अदृष्य शक्ति ने मुझे अपनी जकड़ में मजबूती से कैद किए हुए छत के साथ मिला दिया। कमरे का फर्श मुझे स्पष्ट दिखाई दे रहा था मैं बहुत डर गया कि अगर इस आलौकिक शक्ति ने मुझे जहां से पटक दिया तो मेरा क्या हश्र होगा ?

मैंने उस आलौकिक अदृश्य शक्ति की जकड़न से मुक्त होने के प्रयास जारी रखे और पूरी शक्ति से संघर्ष करता रहा। अब अचानक वह शक्ति मुझे धीरे-धीरे ज़मीन की तरफ लाने लगी। और स्टडी टेबल के पास नीचे जमीन पर छोड़ दिया लेकिन जकड़न में कोई कमी नहीं आई। मेरे कमरे का एक दरवाज़ा जो बिलकुल स्टडी टेबल के पास था और बाथरूम की तरफ खुलता था। मुझे अचानक लगा कि वह दरवाजा खुल गया है। और उस दरवाजे से कोई अंदर आने का प्रयास कर रहा है। मैं स्तब्ध रह गया कि दरवाज़ा अंदर से बंद था। मैंने इसे खोला नहीं और यह कैसे खुल गया। किसी के अंदर आने के डर से मैंने झट से दरवाज़ा बंद करना चाहा, किंतु मैं उठ नहीं पाया। आखिर मैंने पूरी शक्ति लगा कर उठने का प्रयत्न किया, तो मुझे उस आलौकिक अदृश्य शक्ति की पकड़ में कुछ ढीलापन लगा। मैं एकदम पूरी शक्ति से उठा और दरवाज़े की चिटखनी बंद करने लगा, इससे पहले कि मैं दरवाज़ा बंद करता मुझे किसी का एकदम बाह्र जाने का अहसास-सा हुआ।

मेरी नींद खुली तो पाया मैं अपने बिस्तर पर ही हूं। पसीने से तरबतर हुए मेरे कपड़े मेरी मानसिक्क और शारीरिक थकान की गवाही दे रहे थे। लाइट आन करके टाइम देखा सुबह के चार बज चुके थे। मैंने पानी पिया और फिर सोने का प्रयत्न करने लगा।

०००

चमन निवास,
गढ़ी-विश्ना, ज्यौड़ियां,
जम्मू-181202

और अब

□ सुतीक्ष्ण कुमार शर्मा 'आनंदम्'

जब हम घर में थे
तुम बेगाने थे,
जब तुम घर में थे
हम बेगाने थे
और अब
यहां न तुम्हारा घर है
न ही हमारा धर है
किंतु कुछ तो है कि
यहां हम दोनों एक हैं।

तो ऐ मेरे देश

जब कभी मैं
गगन-विहार करते चांद को देखता हूं
चमकते सितारों संग झिलमिलाते
कांतियुक्त सप्तर्षि निहारता हूं
और भांपने लगता हूं
आकाशगंगा का मार्ग
तो ऐ मेरे देश
तुझे मैं यहां भी अपने पास पाता हूं।

फरफराती हवाओं का स्पर्श जब
सिहराने लगता है तन-बदन,
हिमाच्छादित मौंट रेनियर और बेकर की कड़ियां
नयनों से उतर कर
अंतस्तल को करने लगती हैं प्रलोभित
तो ऐ मेरे देश
तुझे मैं यहां भी अपने पास पाता हूं।

कल-कल करती झीलों और झरनों का उत्कर्ष
सहर्ष बांटने लगता है हर्ष,
दुधिया जल बहातीं
'विनैची' सी उद्धत और मनमौजी नदियां
किसी सहृदय को सम्मोहित कर
रसिक बनाने में सक्षम
उत्पन्न करने लगतीं हैं जब सुब स्पंदन
तो ऐ मेरे देश
तुझे मैं यहां भी अपने पास पाता हूं।

०००

गज़ल

❑ *ज्योतीश्वर पथिक*

बस्ती-बस्ती जंगल-जंगल सुलग रही है आग
रंग महल में खेल रहे है राजा-रानी फाग

जंगल-जंगल बीहड़-बीहड़ सभी लगें सुनसान
न जाने कब किस बांसी से झपटें काले नाग

पल-दो-पल का मिलन हुआ तो जीवन-भर का रोग
हम ने पाला वर्षों तक है वैरागी - अनुराग

सागर मंथन इक धोखा है, मिथ्या का व्यापार
सीप व मोती अंदर तह में, ऊपर है बस झाग

अपनी बोटी खातिर पिंजर नोच रहे कंकाल
चाहे कह लो छीना-झपटी, चाहे कह लो आग।

एक सुनहले कल की खातिर आज करो विषपान
बच जाओ तो कल पा लेना, अपना सपना मांग

धरती का धन सब का हिस्सा फिर भी पलती भूख
लूट के ले जाते हैं पूंजी, कुछ बनिये कुछ छाग :

०००

इस से पहले

❑ डा. जितेन्द्र उधमपुरी

इससे पहले कि आज
तुम्हारे द्वार पर सांझ ढले
अंधेरा दूर तक फैल जाये।

इससे पहले कि
तुम भूल जाओ
बर्फ, बारिश, धूप,
हवा और हरियाली का संगीत,
फसल की खुश्बू
लोकोक्तियों, मुहावरों,
लोकगीतों का रस
और छोटा हो जाये
तुम्हारी भाषा का शब्दकोश,

इससे पहले कि
तंग हो जाये धरती तुम्हारी,
बौना हो जाये आकाश,
सब बहसें, वार्ताएं, चर्चाएं
हो जाएं निरर्थक, तर्कहीन,
खेतों-खदानों
कल-कारखानों
सचिवालयों-मंत्रालयों से
कट जायें तुम्हारे नाम।

धरती-पुत्रो!
तुम चाहो तो नाप सकते हो
अपने आसमान की ऊंचाई
कर सकते हो उस पर चहलकदमी
और सूरज की बराबरी।
इससे पहले कि
तुम अपनी ज़मीन की

पहचान भूल जाओ,
मुल्क के इतिहास से ऊब जाओ।
टुकुर-टुकुर निहारते रहने से कहीं
बेहतर होता है
गिद्ध की तरह
झपट पड़ना,
कटी उंगलियों से
अपना इतिहास लिखना।

ooo

चौखट

❑ *डा. रीता हजेला 'आराधना'*

जड़ दी जाती है स्त्री चौखट में
दरवाजे की तरह
पुरुष खड़ा रहता है स्थिर
अपनी जमी जमाई जगह

खुलती बन्द होती रहती है स्त्री
अपनी मान्यताओं
रिश्ते-नातों के साथ

ढकेली भी जाती है
पांव की ठोकर से
कभी धीरे से कभी ज़ोर से
हाथ के धक्के से
हथौड़े की चोट से, फिर

कितना भी निकले बाहर
छटपटाए इधर-उधर
चौखट के कब्जे
जकड़े रहते हैं
उसकी स्वतंत्रता कस कर।

ooo

687 हुडा फेस-2, सैक्टर 12
पानीपत - 1323103, हरियाणा

यदि रहे यह हाथ मेरे हाथ

❑ डा० जितेन्द्र नाथ पाठक

एक नन्दन-वन हमारे हाथ
यदि रहे यह हाथ मेरे हाथ

रोशनी की उम्र कम होती गई
यह अंधेरा बढ़ रहा हर रोज़

एक ज़हरीले दिवस का दंभ
झेलते हैं फूल-पौधे रोज़

इस अंधेरे वायुमंडल में
ज्योति-कंपन प्रिय तेरे साथ

लोग जो साथी बने पथ में
काटते मुझ को रहे चुपचाप

जो सृजन के गीत गाते बढ़े
उनको रोकते हैं बेसुरे आलाप

समय की बेहोशियों के बीच
एक चंदन-वन हमारे साथ

फेफड़ों में भर रहा निरुपाय
धुआं उठता चतुर्दिक दिन-रात

ज्ञान, मेधा, मूल्य, क्षमता रोज
विपथगाएं कर रहीं निर्यात

इस धुएं से घुट रहे क्षण में
क्रांति-वंदन प्रिये तेरे साथ

०००

ऊंचाइयों में रखा क्या है

❑ अनिला सिंह चाड़क

ऊंचाई न दे इतनी कि स्नेहित हथेलियों
पर थिरकते कदम
दावा करते हुए सतरंगी धड़कनों
पर बजने का,
प्यार का सतरंगी इन्द्रधनुष छूने का
सरक जायें धीरे से
और उंगलियां खोखले आसमां छूने
की चाहत में बढ़ती रहें
अनजाने में,
रंग छलावा देते हुए ऊंचे और
ऊंचे कहीं छिप जायें
निरन्तर बनी रहे मृगतृष्णा,
वो हथेलियां भी छूट जायें पीछे
जिन पर थिरक कर ही छू सकती थी
मैं आसमां,
दौड़ा सकती थी अनगिनत रंग शिराओं में
कि शायद निचोड़ कर भी दिल को
रंग सकती आसमां ज़िन्दगी के।
नहीं चाहिये ऊंचाई इतनी
कि छूने को तरस जाऊं
प्यार भरे एहसासों की उंगलियां
भटकती रहूं क्यूं इस खोखले से
आसमानों में बेइंतहा परवाज़
लिये ?
ए ईश्वर
ए ख़ुदा
टिकाये रखना
मेरे नंगे पांव
मेरे बहुत अपनों की हथेलियों पर
जिनके स्पर्श से उमड़ती तरंगों
से उठे एक उमंग दिल में

और बजती रहें बांसुरियां!
चाहिये बस इतना भर ही!
गर प्यार की अतल गहराइयों में
ही मिल जायें उमगते प्यार का
धड़कता आसमां
तो इस खोखले से आकाश
की ऊंचाइयों में रखा क्या है।

ooo

भ्रम

❑ ओम नागर

हमारा संबंध
मानो दीवार पर टंगी चिक
कि हमेशा संभव
नहीं जिसके
आर-पार देख पाना
कभी-कभी
भ्रम भी कराता है
हर्षातिरेक का आभास
जब कोई अपना
महसूस करता है
पर्दे के पीछे से
झांकती आंखों में/अपना
ही धुंधला-सा
चेहरा......
बहुत होता है
कभी-कभी
जीवन के लिए
इतना-सा भ्रम।

ooo

857-सेक्टर-4 केशवपुर।
कोटा-9 (राज.) मो. 9460677638

सपने

❑ शारदा साहनी

और......
समय की रेखाएं
मंत्रोच्चार सी
जीवन की घाटी में गूंजतीं रहीं।
बर्फ फाहों सी
हर पल जीवन में ढरती रही।
शारदीय नभ पर
बदरिया बरसती रही।
कभी सरसती रही
कभी बरसने को तरसती रही।
सूर्योदय की छाती पर
रात हर दिन सजती रही।
आंखों में सपने दिन-रात सजते रहे
कभी आंखों की नमीं में सिजते रहे।
कभी अग्नि बने.....
कभी त्रिशंकू से औंधे
मन में लटके रहे
जीवन की यज्ञशाला में सपने
कभी समिधा बने
कभी आहुति से जलते रहे
और यह क्रम जारी रहा।
मनसागर लहरों के साथ
दूर-दूर तक.....
करतल में फेन उठाए चलता रहा
न जीवन पर्यन्त यह यज्ञ पूरा हुआ
हर सपना यहां चूरा हुआ।

जीवन के अन्तिम द्वार पर
सांकल खोलते ही–
उस ने पूरी श्रद्धा से
ऊपर उठाए हाथ!
उस के हाथों में गिरा
एक.........
बस एक बीजाक्षर
एक बीजमंत्र
''कर्मण्येवाधिकारस्ते''
और अब वह यज्ञ पूरा हुआ
यथार्थ हुआ, सार्थक हुआ।
पर........
समय का मंत्रोच्चार
यूं ही.......
अब भी लगातार,
छिन्नतार; बारबार;
चलता रहा
चलता रहा।

○○○

गली नं. 2, घर नं. 14
सूर्य विहार बोहड़ी चुंगी
तालाब-तिल्लो, जम्मू

नदी - एक आशा

❑ राजेंद्र निशेश

नदी !
तुम कहां भागी जा रही हो
कलकल का गीत गुनगुनाती
जैसे कोई विहरनी
अपने प्रियतम की चाह में
एक आशा का गीत गाती
आगे बढ़ती जाती है
दुनिया से बेखबर।

नदी!
तुम कठोर भूमि पर भी
कैसे बहती हो
बिना किसी पीड़ा का इज़हार किये,
आम लोग तो
ज़िन्दगी के कठोर सच से
घबरा जाते हैं,
लेकिन एक तुम हो
जो अपनी ही धुन में
आगे बढ़ती जाती हो
सब दुःखों को समाहित करती
अपने भीतर।

नदी क्या तुम अपनी
सहजता का रहस्य
बतला सकती हो!

ooo

2698, सैक्टर 40 सी
चण्डीगढ़ - 160036

दिशाहीन

❑ सिद्धेश्वर

भीड़ में
दौड़ लगाना चाहते हैं!

खाली मैदान में
सुनसान सड़कों पर
घुटना टेक देते हैं हम......!!

दिशाहीन होते जा रहे हैं
हम
चौराहे पर
लाल-पीले बल्ब देखे बिना
बढ़ जाते हैं आगे

और फिर
उसी चौराहे पर
लौटने की चाह में
भूल बैठते हैं
अपनी यादाश्त.......!

पहचाने जाने का
भय होता है कहीं.......
कहीं पर
नहीं पहचाने जाने का विक्षोभ

और तब
निर्णयहीन
भटकते रह जाते हैं/हम
जिंदगी भर
दिशाहीन........!!!

ooo

बोधिपथ

❑ डा. सुरेश उजाला

मुझे याद है-
शाक्य
और
कोलिय वंश के बीच
जबरदस्त टकराव
बार-बार
रोहणी नदी
जल-बंटवारे को लेकर
संघर्ष

अंतत:-
शाक्य परिषद का
कठोर फैसला
हुक्म
और-
उसकी तामील
जिसके तहत-
करना था-युद्ध
अथवा
संपत्ति का त्याग
या फिर-
रातोरात-देश त्यजन
जिसका परिणाम
जानता था — मैं
भलीभांति

बहरहाल-
जैसा तुम चाहते थे
वैसा ही हुआ
हे! शाक्य संघ.....
मैं त्याग चुका हूं
अपना सर्वस्य

सिवा तन के
और
बन चुका हूँ धम्म-प्रवर्त्तक
विश्व के मानचित्र पर
मानव-कल्याणार्थ

क्योंकि
मुझे याद है
सम्पूर्ण घटनाक्रम
हंस-वृद्धरोगी-
संयासी
जिन्होंने-
झकझोर दिया था
मैं और मेरा
अंत:करण
तदोपरांत
मैंने खोजा
भव-बंधनों के भ्रम-जाल से
मुक्ति-मार्ग
यानि-सृष्टि की उत्पत्ति
वृद्धि
और
विनाश
वस्तुत:
विकास की गति
और
उसका रहस्य
सुजाता की खीर का
शक्ति संचार

आंख-कान-नाक-जीभ
त्वचा
और मन से जाना
रूप-शब्द-गंध-रस
स्पर्श
और मनोविकार की प्रवृत्ति
इसके इलावा
ईश्वर-परमेश्वर
आत्मा-परमात्मा
पाप-पुण्य
जन्म-पुनर्जन्म
स्वर्ग
और
नरक की असलियत
ढोंग और पाखण्ड का फैलाव
शील-समाधि-प्रज्ञा की गुंथन
और
उनका जीवन-महत्त्व
जिन्होंने बनाया
सिद्धार्थ को मानव
मानव को तथागत
तथागत को महामानव
महामानव को बोधिसत्त्व
और
बोधिसत्व को आदमी
बोधित्व के लिए

शायद!
उसी का स्वरूप
उसी का बिम्ब

उसी का असर है
अब्राहिम लिंकन द्वारा-
अमेरिका में
दास-प्रथा की समाप्ति
मार्टिन लूथर किंग द्वारा
अश्वेतों की मुक्ति
फ्रांसीसी युद्ध
यानि फ्रांस में-
मुक्ति आंदोलन के तहत
न्याय-समता-स्वतन्त्रता
और
बंधुत्व के आधार पर
राज-व्यवस्था

नेल्सन मंडेला द्वारा
दक्षिण अफ्रीका में
गोरे-काले
रंग-भेद का खात्मा
बलादि मिर इलीज लेनिन
द्वारा
सोवियत रूस में
अक्टूबर-क्रांति
जार-द्वितीय की हार
सर्वहारा की विजय

और
भारत में
बोधिसत्व भारत रत्न
डा. भीमराव अम्बेडकर द्वारा
जाति-विहीन समाज की-
संरचना
स्थापना लक्षण
जिनके कारण आया
बदलाव
निरन्तर दुनिया में

फिर भी.......
हे शाक्य संघ!
मैं ऋणी हूँ
आभारी हूँ
कृतज्ञ हूँ-
आपके आदेश
और
निर्णय का

ooo

पता: 108- तकरोही, पं. दीनदयालपुरम मार्ग, इन्दिरा नगर, लखनऊ, उ. प्र. मो० 09451144480

अर्थ नहीं टूटते

❑ कृष्ण कुमार शर्मा

टूटते
केवल स्वप्न ही नहीं हैं
न ही केवल
कांच के खिलौने।
टूटना
केवल हृदय का ही नहीं होता
न ही केवल
हड्डियों का।
कई बार
होंठ भी टूटते हैं
और शब्द भी।
लेकिन
शब्दों के अर्थ हमेशा रहते हैं,
मस्तिष्क में, हवा में, अंतरिक्ष में, ब्रह्मांड में।
अधर
भले ही खामोश हो जाएं
दांत
शब्दों को चबा डालें,
लेकिन
अर्थ
चीख-चीख कर अपने अस्तित्व का बोध करवाते हैं।
वही बोध
जो गर्भ में पल रहा शिशु अपनी मां को करवाता है।
गर्भ में अर्थों का होना ही महत्त्वपूर्ण है।
यही अर्थ
हर बार
जन्म लेकर

अभिमन्यु की तरह
कपटी कौरवों के चक्रव्यूह से टकराते हैं
और
दे जाते हैं
युद्ध को नए अर्थ।
अर्थ कभी नहीं टूटते।

०००

डाकखाना - पुरखू
तहसील जम्मू - 181206

ग़ज़ल

❑ *सुनील शर्मा*

होंठ फूलों के रसीले हो गये!
नैन मेरे भी नशीले हो गये!

बादलों को डस लिया है सांप ने,
होंठ शहरों के भी नीले हो गये!

मौसमों ने करवटें ली इस तरह,
बल कमर के उफ़ लचीले हो गये!

फिर हवा उसकी गली से आ गई,
दिल के बादल और गीले हो गये!

बन संवर के शहर में वो यूं फिरे,
तीर नज़रों के नुकीले हो गये।

मयकदे की हाज़री कुछ बढ़ गई,
हाथ तेरे जब से पीले हो गये!

फूल की नज़रें भला क्यों झुक गई,
पेच गजरे के जो ढीले हो गये!

गायकी में आ गया है इन्कलाब,
बेसुरे भी अब सुरीले हो गये !

०००

201/3, छन्नी हिम्मत
जम्मू

ग़ज़ल

❑ अनु जसरोटिया

मंज़िल उन्हें ठुकराती है बेकार समझ कर
रुक जाते हैं जो राह को दुश्वार[1] समझ कर

मैं आज की सुर्ख़ी हूँ जबानों[2] पे लिखी हूँ
मत फेंकना कल का मुझे अख़बार समझ कर

सद शुक्र[3] कि तक़दीर ने ये दिन भी दिखाया
आए हैं वो मिलने मुझे बीमार समझ कर

पाला है तुम्हें हम ने बड़े चाव से बच्चो
मत हम को गिराना कोई दीवार समझ कर

ये सच की डगर तो बड़ी दुश्वार डगर है
आना न इधर तुम इसे हमवार[4] समझ कर

दुनिया की निगाहों में जो था एक तमाशा
हम ने तो निभाया उसे किरदार[5] समझ कर

शीरीं[6] है बहुत उर्दू ज़बाँ इस लिए हम ने
अपनाया है उर्दू को मज़ेदार समझ कर

हम सर को यूहीं अपने कहीं ख़म[7] नहीं करते
सर हम ने झुकाया है दरे-यार समझ कर

सौंपा गया ये शेर का फ़न हम को 'अनु' जी
भगवान की जानिब से समझदार समझ कर

ooo

इन्दिरा कालोनी, कठुआ-184101 (जे.के.)

1-मुश्किल 2-माथो 3-सौ शुक्र 4-समतल
5-आचरण 6-मीठी 7-झुकाना

अर्पण

❑ श्रीमती रोहिणी चाड़क

ना गंगा
ना काशी
ना स्वर्गसरोवर की चाह मुझे

मेरा अस्तित्व इतना बौना नहीं
जो कुम्भ में समाए
गठरी में समेटा जाए
या शुद्धि के नाम पर डुबकियाँ लगाए

मेरा अस्तित्व अस्थियों का
गुलाम नहीं
जीवन यात्रा का साक्षी है
मेरा जीवन मेरा अन्त
इस छोटी-सी नदी को
अर्पण है
जिस नदी के किनारों ने
मेरे नन्हें-नन्हें पांव चूमे थे
जिस नदी के सीने पर पांव
रख, मैंने पार होना सीखा था

जिस नदी के किनारों पर
मां ढूंढती थी मुझे

वह नदी जो मेरे अस्तित्व की
पारखी है
कहां पहचानेंगे गंगा
के तट मुझे
कहां अपनाएंगे मुझे
काशी के घाट

स्वर्ग सरोवर तो देवताओं
के इर्द-गिर्द बहता है
पछाड़ देंगी उसकी पक्षपाती लहरें

मेरी नदी महान है
निश्छल है
स्वतंत्र हो बहती है
मैं इसमें समाहित हूं
यह मुझ में समाहित है
मेरा अस्तित्व मेरी अस्थियां
इस छोटी-सी, महानदी को।
अर्पण हैं

ना गंगा ना काशी
ना स्वर्ग सरोवर की चाह मुझे

ooo

गीत

❑ *शाम साजन*

रंग सुगंध का जादू लेकर, फागुन की रुत आई
मधुर-मधुर रस घोल रही है, कानों में पुरवाई

मदमाती रुत बोल रही है, मधुर प्रेम की बोली
मन के आंगन में उतरी है, प्रीत नगर की डोली
गीतों की दुल्हन इस डोली, में सज-धज कर आई
रंग सुगंध का.........।

फूलों ने तो मीठी खुश्बू, सारे जग में भर दी
रंगों ने भी सारी धरती, इन्द्रधनुष-सी कर दी
खेत-खेत में, गाांव-गांव में, पीली चुनर लहराई
रंग सुगंध का.......।

डाल-डाल पे भंवरों की, सरगम का जादू जागा
सारे जग को बांध रहा है, प्रेम का कच्चा धागा
कोयल के गीतों से गूंजी गांव-गांव अमराई
रंग सुगंध का........।

ooo

सपवाल साम्बा
फोन : 9419138740

चिनार का पत्ता

❑ राजेन्द्र कुमार च्रोंगू

पतझड़ के मौसम में चिनार के
वृक्ष से गिरा हुआ पत्ता,
अपनी व्यथा यदि बता सकता
तो अवश्य ही बता देता,
चिनार - हां, कश्मीर की
प्राकृतिक सुन्दरता का प्रतीक।
बसन्त आने पर
खिल उठते हैं चिनार के पत्ते,
बिडम्बना तो देखिये
खिलता है,
पर अल्प समय के लिये,
पता है इस पल्लव को कि
पतझड़ उसे विनाश की ओर-
सुख से दुःख की ओर-
प्रकाश से अन्धकार की ओर ले जायेगा,
इस बार-बार के
विनाश-चक्र पर भी,
वह हर बसन्त में जन्म लेता है,
खिलने के लिये,
लोगों को आत्मिक सुख
प्रदान करने के लिये-
इस आशा में कि शायद
अब की बार पतझड़ न आये।

ooo

65-डी, पटोली मंगोत्रियां, जानीपुर, जम्मू-180007
(मो. 9419830843)

मेले से आई लड़कियां

❑ नीलकमल

जब कि रास्ते दो ही थे
उन्हें चुनना था एक को
वे मेले से बाहर आना चाहतीं थीं

एक रास्ता उन्हें लाता
मेले की चमक-दमक में
उनके होंठ तब इस तरह
सूखे-दरके नहीं रहते

दूसरा रास्ता जाता
मेले से बाहर की दुनिया में
जहां खरीददारों की मर्जी चलती

उन्होंने बिक जाने को
बचे रहने के पक्ष में चुना

एक लड़की जुट गयी आखिरकार
बाबू साहब के लिए
वे लड़की को सोते-जागते
ओढ़ते-बिछाते, खाते-पीते
और डकारते

लड़की भूलने लगी
मेले से पहले के बसंत
जबकि बसंत उतर चुका था
उसके तन-मन में
बदलता हुआ करवटें

लड़की ने प्रेम किया था
यदि यह किंवदंती सच है

लड़की ने पीठ पर ढोई थी
धूप की गठरियां
छांह की हत्या भी कर डाली
चिलचिलाती दोपहरी में

लग गया था मेला
सावन के अंधे बाबू साहब
रहने लगे गूँगे

मेले से आई लड़की
फिर आई मेले
जिस राह गई थी मेले से बाहर।

ooo

34-बी जेवर रोड
कोलकाता-700019

डोगरे हम डोगरे

❑ *राकेश शर्मा 'सरकार'*

डोगरे हम डोगरे मस्ती में रहते हैं
जीत न पाये, हमसे कोई, सब लोग यह कहते हैं,
डोगरे हम डोगरे मस्ती में रहते हैं

मस्ती भरा है अपना जीना,
दुश्मन छोड़े हमें देख पसीना,
देश की फौज में अपनी कहानी
प्यार की हम देते हैं निशानी
न हम करते हैं जुल्म और न ही सहते हैं
डोगरे हम डोगरे.......

मेहनत रहा है नारा अपना
समृद्ध भारत है अपना सपना
खबरदार रहे भारत के दुश्मन
भारत देश है अपनी धड़कन
कीटाणु देशभक्ति के हमारी नस-नस में बहते हैं
डोगरे ....

भारत का सर न होने देंगे नीचा
इसको हमने है खून से सींचा
दुश्मन पीछे हटते जाएं
मिल के जब हम कदम बढ़ाएं
हम भारत के हैं रखवाले, सारी दुनिया से कहते हैं
डोगरे..........

ooo

निवास : 223 मुबारक मंडी जम्मू

पृथ्वियां : एक विवेचन

❑ *योगिता यादव*

कविता संग्रह	:	पृथ्वियां
कवयित्री	:	अरुणा
प्रकाशक	:	ओम प्रकाशन जम्मू
प्रकाशन वर्ष	:	2008
मूल्य	:	150 रु.

अरुणा जी को कई बार मंच पर कविता पढ़ते सुना है, लेकिन इन्हें पुस्तक रूप में पढ़ने का अपना एक अनूठा अनुभव है। इन्हें पढ़ते हुए कई रचनाएं और उनके रचयिता मेरे ज़हन में आए, लेकिन हर पंक्ति पर उनका ज़िक्र करने की बजाए मैं प्रयास करूंगी कि बात कविताओं पर ही हो-

काव्य संग्रह पृथ्वियां की अधिकांश कविताओं के शब्द हमारे आसपास ही हमें दिन-प्रतिदिन नज़र आते हैं, लेकिन सुनियोजित संयोजन से यही शब्द युग्म क्या कमाल दिखाते हैं, इसका भान इन्हें पढ़ने के बाद ही हो पाता है। मसलन-

'तार पर टंगे वस्त्रों' पर जब कवियत्री की नज़र पड़ती है, तो अंतस की नई साम्यता दिखाई देने लगती है। रचती हैं-

(34)
टंगी-टंगी
हवाओं के पंजे में
तार पर सूखते वस्त्र सी
भीगती,
निःशब्द पृथ्वी

पृथ्वी को विभिन्न कोणों से देखता यह काव्य संग्रह संयमित अनुभूतियों के कई रूप अपने में समाहित किए हुए है। संयमित इसलिए क्योंकि इनकी हर कविता अपना एक अलग मिज़ाज लिए है। एक ही शीर्षक में पिरोयी 87 कविताओं का ढेर होने के बाद भी वे एक

दूसरे से रगड़ नहीं खातीं, बल्कि एक-दूसरे की सखी की मानिंद पाठक को आगे और आगे बढ़ने का संकेत देतीं हैं। बहुत मुमकिन हैं कि प्रथम पाठन में इन पृथ्वियों के कई कोण हमसे अछूते रह जाएं। यही भेद है मंच की और एकांत की कविताओं में। मंच की कविताएं तत्काल वाहवाही अर्जित कर लेती हैं, परंतु एकांत में सृजित मनन की कविताएं बहुधा वाह की बजाए आह के साथ विदा लेती हैं।

ये हींग की खुशबू की तरह तेजी से नहीं फैलती, बल्कि कहवे की रंगत की मानिंद आहिस्ता-आहिस्ता अपना रंग छोड़तीं हैं, आत्मीयता की तपिश पाकर।

इनमें स्त्री विमर्श है परंतु प्रतिशोध या प्रतिघात के साथ नहीं, बल्कि उनमें एक अनुभवी व्यक्ति की समझ बोलती है-

कविता 24 की शुरुआत देखिए-

पृथ्वियां हो जाएंगी हम
सबकी सब एक दिन
किसी खास धुरी पर-
-कीली जाती हुई

वे आगे कहतीं हैं-

यह कोई मंत्र नहीं
जो दूंगी मैं
वसीयत में, तुम्हें!
खोज लो
अपना जहां
अंधेरे गहराने से पहले

पृथ्वी होने के सारतत्व को जान चुकी कवयित्री इंगित करती है कि ये रचनाएं किसी आम स्त्री की नहीं, बल्कि उन तमाम स्त्रियों की हैं जिन्हें अपने भीतर के पृथ्वी तत्व का भान है। धीरज, कठोर, सहनशील, सृजक, अतृप्त, तृप्त जैसे अनगिनत और अनाम तत्व।

बात शैली की करें तो छोटे-छोटे मुक्तकों में उन्होंने बहुत कुछ कहने का प्रयास किया है। प्रकृति के विभिन्न चित्रों को शब्द युग्म में बांधकर शब्द-चित्र खींचने का प्रयास है ये। धूप के ही विभिन्न बिंब देखिए,

जरूरी है
बचाना इस सच्ची-सुच्ची धूप को
बांध लूं इसे झीने से आंचल में
या इसे रखूं पलकों पर

कि नहीं भटके
कि ये दिन हैं इसी से
और क्या सोचूं इसको लेकर!

इससे पहले 27वीं कविता में

क्यूं बढ़ाया हाथ
कर लिया बंद अंजुरि में
सिमट गई धूप
परछाई में अपनी

आगे लिखती हैं-

छीन नदी को
कर धूप को बस में

यहां धूप कभी संस्कृति और संस्कार हो जाती है, जिसे बचाकर रखना लाज़िमी है, कभी यह तपिश, कभी उजास, कभी अधिकार और कभी सृजना के संकेत लेकर उभरती है।

डायना पर लिखी कविता में वे कहती हैं-

मुस्कान का जादू तुम्हारा
धूप से भी उज्जवल

धूप के बिंब से अलग यदि इस कविता पर चर्चा करें तो वह बहुत विस्तृत हो जाएगी। स्त्री के अंतस और वृहद् परिप्रेक्ष्य में रची जा रही रचनाओं को स्त्री विमर्श का साहित्य कहा जा रहा है। जिनमें सबसे ज़्यादा प्रचलित है घर और बाहर के बीच तारतम्य बिठाती दोराहे पर खड़ी स्त्रियों का संघर्ष। इन कविताओं में संघर्ष आत्मविश्वास के साथ सिर उठाता है-

(23)
चुनौतियों के सामने
थी हमेशा मैं
हंसती हुई बेधड़क
चलती सिर उठाकर
एक कदम में पृथ्वी
दूसरे में पाताल
तीसरा स्वर्ग पर
और चौथा छाती पर मंजिल की

या जीवन की जड़ों में
क्योंकि हूं पृथ्वी
स्पर्धा में नहीं
दया पर नहीं,
हक की कील पर डटी
-मनवन्तरों से

एक दूसरी कविता में उनका जवाब देखिए -

आओ, देखो आज मैं
पेन और कलुछी एक साथ चलाती हूं
पिता की नींदों में आज मैं
ध्रुव तारे सी चमकती हूं

संघर्षों से टकराने के बाद भी उनके भीतर की कोमलता अभी तरोताज़ा है। कहतीं हैं-

दादी अगर सुन सको तो सुनो (स्वर्ग से)
बहुत संभाल के ही रहती हूं
पर पायल छनक ही जाती है

पृथ्वी अब आकाश, सूरज और चांद सभी के चित और प्रवृत्ति समझ चुकी है। उसके लिए कुछ भी नया, अनछुआ अब नहीं रह गया, इसलिए वह कहतीं हैं-

(26)
ताकना तुमको है पागल हो जाना
तभी तो नहीं जोहती हूं राह

उसकी निगाह अपने लक्ष्य पर और कदम फर्ज की दहलीज पर हैं। सो जल, वायु, अग्नि और आकाश चारों को संबोधित करते हुए वे एक नई दुनिया के सृजन की आकांक्षा व्यक्त करतीं हैं जिसमें सृजन से ज्यादा उनके पोषित होने के अधिकार की मांग परिलक्षित है, बेहद मासूम अंदाज़ में-

खेले बचपन खुली हवा बन
छज्जों पर..........
(31)

इस पूरी प्रक्रिया में वह इतनी बड़ी और सहिष्णु हो जाती है कि प्रत्येक की महत्ता,

उपयोगिता और आकांक्षा को समझ लेने के बाद उन्हें उनका निमित्त बांटने लगतीं हैं -

आओ! महकाओ!
स्वागत है हवाओ।
खुशबू विंध्याचल से लाओ
सुगंध ही तो है
जो अन्य ग्रहों से
भिन्न करती है मुझको
(33)

एक और उदाहरण देखिए -

पृथ्वी की स्थिरता को
कोई मजाक न समझो
अलग हूं मैं धीर, शांत
-
-
रोज़-रोज़ का गरजना-बरसना
नहीं मेरा काम
(81)

स्त्री, कवयित्री और पृथ्वी सृजन के उस असीम शिखर तक पहुंच चुकी हैं जहां कुछ घटेगा तो भी सृजन होगा और यदि नहीं घटेगा तो भी कुछ-न-कुछ जन्मेगा

अजीब है मेरा रुदन
आंसुओं के साथ बह निकलते हैं शब्द भी
दर्द दे रहे थे शब्द
बहा दिए तुम्हारी याद में
----
(25)

जिसका अंत कुछ यूं होता है -

भविष्य में पढ़ेंगे लोग
पृथ्वी और सूरज के इस लीलते-
-प्रेम और विनाश पर लिखी
मेरी कविताएं

शब्द बोती हूं मैं
कोमल
पृथ्वी! तुम पर
उग आते हैं बबूल
मरू में
जाने कहां से
चुपचाप......

संग्रह के अंत तक आते-आते कुछ कविताएं उपेक्षा जनित कुंठा के भाव तक पहुंचती हैं। फिर रचना होती है -

(66)

पृथ्वी!
नहीं आज
तो कब फटोगी
दो टूक कलेजा लिए
मुझे भी तो चाहिए
एक गोद
छुप ज़ाने को
इन नोचते थपेड़ों
भयावह आंधियों
और
ढकते अंधेरों से

पृथ्वी का प्रमुख तत्व है सृजना और सृजक की कुंठा उसका अस्थायी भाव हो सकता है। क्योंकि स्थायी तो सृजन है -

(74)
छूट गया नेहर
न जाने कब
आज मैं स्वयं
हुई हूं एक बरगद, वैसा ही
बहुत कलात्मक न सही
पर
हूं तो,
छाया में पालती हूं
कई-कई भाव

नन्हें-नन्हें घाव

अंत में मैं उस कविता का जिक्र करना चाहूंगी जिसने मुझे भीतर तक झिंझोड़ दिया। इस कविता के इतने पृष्ठ हैं कि यदि ज्वार भाटे में इसे बांधती हूं तो पृथ्वी का सृजक तत्व रह जाता है और यदि संयम से जोड़ कर देखती हूं तो सीमाओं की प्रासंगिकता सिर उठाती है -

पूनम की रात
क्यूं थरथर्रा जाती हो तुम
कांपती पीली पत्ती सी
ओ महान पृथ्वी......

एक बहुत सुंदर, संयमित और सुसज्जित किताब के लिए अरुणा को हार्दिक बधाई। और इस खूबसूरत रचना संसार को आवरण देने के लिए संजय शर्मा जी को साधुवाद।

०००

'मैं समुद्र ही हो सकता था' : एक विवेचन

❑ *महाराज कृष्ण संतोषी*

कविता संग्रह : मैं समुद्र ही हो सकता था

कवि : श्याम बिहारी

प्रथम संस्करण : 2008

मूल्य : 150 रु.

''मैं समुद्र ही हो सकता था'' श्यामबिहारी की पहली किताब है। किताब को लेकर जब किसी ने उनसे पूछा था कि कब छपेगी तुम्हारी किताब तो जो जवाब उन्होंने दिया था वह उन्हीं के शब्दों में -

''अब क्या कहूं.. यह तो अभी समय के गर्भ में है। पता नहीं....कब किस रूप में प्रकट होगी। अभी से क्या कहूं! आखिर मुझे शब्दों के छिलके नहीं! एक धड़कती हुई किताब चाहिए, जिसकी सांसों में सुगंध हो....एक-एक पंक्ति में किलकारी हो....कोई प्रश्नाकुल चीख...एक धड़ाम...गड़गड़ाहट...बिजलियों की कौंध! कुछ ऐसा यह सोयी-सोयी अलसायी सी दुनिया आंखें खोलने को विवश हो जाए! क्या आ पाएगी ऐसी किताब! क्या मैं दिवास्वप्न देख रहा हूं!''

श्यामबिहारी की रचना प्रक्रिया का केंद्रिय बिंदु भी यही है और जिस किताब का वह स्वप्न देखते हैं...क्या वे उस स्वप्न के निकट भी पहुंचे हैं इसका निर्णय उनका हर पाठक अपने लिए करेगा।

श्यामबिहारी कदकाठी से कठोर और निर्मम ज़रूर दिखते हैं पर वे भीतर से अति कोमल और संवेदनशील हैं। ईमानदार सोच के मालिक जो किसी का लिहाज़ नहीं करते। उनमें अभिव्यक्ति का कौशल भी गज़ब का है पर एक दिक्कत है उनके साथ कि वे कविता और डायरी को गड़मड़ कर देते हैं। कविता और डायरी दो अलग और स्वतंत्र विधाएं हैं जो अपने रचनागत अनुशासन से बंधी होती हैं पर श्याम बिहारी तो जैसे किसी भी अनुशासन को भंग करने के लिए ही लिखते हैं। इसीलिए कभी-कभी यह फैसला कर पाना कठिन हो जाता है कि वे कविता कर रहे हैं या डायरी लिख रहे हैं। पर एक बात जो बहुत महत्त्वपूर्ण है और वह यह कि उनकी कही बात में दम होता है। अंदाज़ चाहे जैसा भी हो। वह कहते हैं-

''एक कवि की चाहे जो भी उम्र हो पर उसके पास हर उम्र का मन होता है''

ऐसे कवि की आंख हर दिशा में घूमती है और जो जैसा देखती है, उसे ठीक वैसा ही काग़ज़ पर उतारती है सीधे और लाग-लपेट के बिना यह सोचें कि रचना का सौंदर्यबोध गड़बड़ा तो नहीं जाता। अपनी इस मानसिकता का इज़हार उन्होंने खुद इस तरह किया है-

''वे कहते हैं
मुझे ऐसी कविताएं नहीं लिखनी चाहिए
उनकी भावनाओं को पहुंचती है चोट!
भाड़ मे जाएं उनकी भावनाएं...उनके संस्कार!
जब कुंआरे बच्चे बूढ़े होते दिखने लगें....
हर दिन भरे हों अख़बार बलात्कार की ख़बरों से!
जब शक, हवसो-हसद की हवा में घुट रहा हो हर किसी का दम...
उनकी भावनाओं और वर्जनाओं का अचार तो नहीं डाला जा सकता ?''

श्यामबिहारी में कुलीन के प्रति अनादर उनकी रचनात्मकता का एक अहम हिस्सा है। उनकी कविताओं में अद्‌भुत गत्यात्मकता होती है जो पल-पल बदलती उनकी सोच को दर्शाती है। वे विचारधारा के मोह से मुक्त हैं पर विचार के प्रति पूरे प्रतिबद्ध। उन्हें विचार की ताकत में विश्वास है क्योंकि वे मानते हैं-

'विचार सफेद चींटियों की तरह फैलते हैं और दीवारों की नींद उड़ा देते हैं....उन्हें खोद डालते हैं चुपचाप.....अकस्मात् किसी दिन लड़खड़ाते हुए ढह जाती हैं दीवारें और बदल जाती है दुनिया.....''

श्यामबिहारी के भीतर फौलादी झूठ से लड़ने का हौसला है और वे सत्ता और सत्य की टकराहट में सत्य के प्रति अपनी प्रतिबद्धता घोषित करते हैं। उन्हें सत्ता के प्रलोभन भ्रमित नहीं कर पाते। वे अपनी आत्मा को दुनिया के उस कोने में ले जाना चाहते हैं जहां वह अक्षयी होकर खिले।

श्यामबिहारी एक स्वछंद तबीयत के व्यक्ति हैं जो किसी भी तरह का बंधन स्वीकार नहीं करते। बादल, पहाड़ी बरसात, चट्टानों में खिले फूल उनकी प्रेरणा के वे स्रोत हैं जो उन्हें दूर-दूर तक ले जाते हैं। वे कहते हैं-

''सिलवटें यों मेरे पैरहन में न देख
मैं समुद्र सा बड़ी दूर तक फैला हूं दोस्त''
कभी मुक्तिबोध ने यह कहा था-
जो जैसा है उससे ज़रा बेहतर चाहिए
दुनिया साफ करने के लिए एक मेहतर चाहिए
जो मैं हो नहीं पाता''

दरअसल श्यामबिहारी जी अपने शब्दों को झाड़ू बनाकर एक बेहतर दुनिया की उम्मीद में शब्द साधना करते हैं। वे हर तरह की मलिनता चाहे वह सांप्रदायिक हो या राजनीतिक, सांस्कृतिक हो या सामाजिक, दूर होते देखना चाहते हैं चारों ओर प्यार के फूल खिलते हुए देखना चाहते हैं। प्यार की यह आकांक्षा उनकी कविताओं में सहजता के साथ व्यक्त हुई है। प्यार पाने से ज़्यादा, प्यार देने की ललक उनमें है, क्योंकि उनके लिए इसी

में जीवन का सौंदर्य है। वह घोषित रूप से कहते हैं-

''मैं तो जीवन का कवि हूं
जीवन की बात करूंगा... जीवन से प्यार करूंगा
जब तक जियूं मैं विस्मय मेरा बना रहे....
आने-जाने का यह क्रम....भ्रम भी हो तो बना रहे...
प्यार का भी आएगा मौसम इंतज़ार करूंगा''

जीवन के प्रति कवि का यह प्यार उनकी कविताओं का उत्स है।

श्यामबिहारी की कविताओं का शिल्प बंधा-बंधाया नहीं। जिस तरह नदी बहती है, बादल तैरते हैं आकाश पर, उसी तरह से उनकी कविता भी यात्रा करती है। वे अपनी कविताओं में शब्द-चित्र उकेरते हैं। वे प्रतीक का सौंदर्य प्रकट करते हैं। वे स्वप्नदर्शी आंखों से शून्य को निहारते हैं और धूल भरे मन को गीतों से बुहारते हैं। कोई चिंता नहीं अगर ''लोग कहें पागल है.....बावरा....बेचारा कवि कलम की नोक से दुनिया संवारता है।''

श्यामबिहारी की कविताओं में गज़ब का विस्तार होता है। पृथ्वी, आकाश, समुद्र, वनस्पतियां, बर्फ, हवा, पहाड़, सब उनकी कविताओं में जीवंत प्रतीक बन कर आते हैं। वे उन्हें अपने संघर्ष का हथियार बनाते हैं और इनसे अपने लिए ऊर्जा ग्रहण करते हैं। तभी वे कहते हैं-

''मैं समुद्र ही हो सकता था कि प्रत्येक धारा ने मुझ ही में समाना है
मुझ ही से पाना है अपने प्रवाह का बल''

यद्यपि उनकी कड़वाहटों का अपार विस्तार है पर अथाह है उनकी प्रतिबद्धता और अपना गौरव व्यथाओं में सुरक्षित रखते हैं। दरअसल श्यामबिहारी की जिजीविषा उनकी कविता की ताकत है। वे सब कुछ छिन जाने के बाद भी खुश हैं। ''बित्ता-भर धूप और ज़रा-सी हंसी'' को लेकर भी वे किसी भी तरह का वैचारिक दारिद्रय अपने पास फटकने नहीं देते।

उनके पास एक अपनापा है, जिसका एक किनारा प्यार है, दूसरा कविता। दरअसल श्यामबिहारी प्यार और कविता में इतना विश्वास करते हैं कि इसी के बल पर दुनिया के बदलने का स्वप्न देखते हैं। श्यामबिहारी का यह संकलन इस अर्थ में अनोखा है कि इसमें कविता, डायरी, टिप्पणियां, दार्शनिक सूक्तियां सब शामिल हैं। प्रत्यक्ष रूप से भले ही इन्हें वर्गीकृत न किया गया है। कुछ कविताएं डायरी विधा के अधिक निकट हैं, कुछ डायरी अंश कविता का सा आनंद देते हैं। कुछ टिप्पणियां आपको गुदगुदाती हैं, कुछ उकसाती हैं, कुछ उदास कर जाती हैं और कुछ ऐसी भी पंक्तियां हैं जो लेखकीय मोह के ही कारण संग्रह में रखी गई हैं।

''पर यह कलम.....इसका सफर तो लम्बा है....''

श्यामबिहारी की सृजनयात्रा दूसरी किताब में कैसे आएगी इसका इंतज़ार रहेगा!

०००

बेटी हूं न : एक विवेचन

❑ आशा अरोड़ा

उपन्यास	:	'बेटी हूं न'
लेखक	:	धर्मपाल साहिल
मूल्य	:	120 रूपए
प्रकाशक	:	उड़ान पब्लिकेशंस, मानसा।

'कन्या भ्रूणहत्या' आज समाज की सबसे ज्वलंत समस्या बनकर मुंह बाए खड़ी है। यह अलग बात है कि कई वर्षों से चली आ रही इस समस्या का विरोध व्यापक रूप से आज हो रहा है, जब लड़कियों का अनुपात लड़कों की तुलना में काफी कम हो गया है। चलिए यही मान लेते हैं 'देर आए दुरूस्त आए'। सरकार, मीडिया, धार्मिक, सामाजिक संगठन चेते तो सही। लेखक के प्रयास तथा समाज के उन आम-खास लोगों को साधुवाद जिन्होंने कन्या भ्रूण हत्या विरोधी मिशन में अपना सक्रिय योगदान दिया और दे रहे हैं।

उपन्यास का कथ्य एक प्रतिष्ठित, धनी, हठी एवं दम्भी राजपूत परिवार में जन्मी जुड़वां कन्याओं को लेकर है। उपन्यास का आरंभ कचहरी के एक दृश्य से होता है जहां कुंअर रूद्र प्रताप सिंह एक प्रसिद्ध नेता पर डॉ. डायना द्वारा किए एक मुकदमे की हलचल है। मीडिया से लेकर आम आदमी इस मुकदमे को लेकर उत्सुक दिखता है। डॉ. डायना कुंअर रूद्र प्रताप सिंह को अपना पिता बताकर, उसे उसके बचपन एवं अधिकारों से वंचित रखने की एवज में एक करोड़ रूपए हर्जाने का मुकदमा दायर करती है। वास्तव में कुंअर रुद्र प्रताप सिंह राजस्थान के एक प्रतिष्ठित धनाढ्य खानदान के कुंअर हैं जो अपने पारिवारिक अंधविश्वास को प्रथा का नाम देकर कायम रखना चाहते हैं कि राजपूत खानदान में लड़कियों का जन्म लेना पाप है और लड़की के जन्म लेते ही उसे मार डालना उनके खानदान की प्रथा (कुप्रथा) है। उनका मानना है कि लड़के ही ऐसे उच्च घरानों का 'स्टेटस सिम्बल' हैं। कुंअर रूद्र प्रताप सिंह अपने खानदान में दो जुड़वां लड़कियों के जन्म लेने से उलझन में पड़ जाते हैं क्योंकि वह अपनी पत्नी भवानी को लड़की होने पर उसे न मारने का वचन दे चुके हैं। भवानी से अत्याधिक प्रेम करने वाले कुंअर चिंतित हो जाते हैं कि जुड़वां बेटियों को लेकर वे अपने खानदान का सामना कैसे करेंगे। भवानी को बेहोश देखकर कुंअर दाई को कुछ पैसों का लालच देकर इस रहस्य को बनाए रखने को कहते हैं कि उनके एक ही बेटी हुई है। कुंअर

गलतियां हैं, जो उपन्यास का मज़ा खराब करती हैं। एक संवाद की कई बार पुनरोक्ति भी बोर करती है।

उपन्यास का विषय समाज की ज्वलंत समस्या तथा आज की ज़रूरत है जिसके विरोध में आज सरकार से लेकर आम आदमी जागरुक हो रहा है। यह समस्या घर-घर की कहानी बन चुकी है। केवल राजपूत घराने या समुदाय ही नहीं बल्कि हर समुदाय के हर घर में लड़कों के प्रति अन्धी चाह देखी जाती है। कन्या भ्रूण हत्या को ज़मीनी स्तर पर लागू करने तथा इसके विरुद्ध कड़े कानून बनाने की आवश्यकता है। आम आदमी की सोच में बदलाव लाने की ज़रूरत है। लेखक ठीक लिखते हैं कि समाज का दृष्टिकोण बदलना सबसे मुश्किल काम है। खासकर वहां जहां औरतें स्वयं ही आत्मसमर्पण कर चुकीं हो, अपने साथ हो रहे अन्याय को अपनी नियति और ईश्वर की इच्छा मान बैठीं हों। सही है जब तक औरत की सोच औरत के प्रति नहीं बदलेगी तब़ तक इस कैंसर जैसी बुराई को खत्म नहीं किया जा सकता। अगर अभी भी नहीं चेते तो लड़के-लड़कियों के घटते अनुपात के दुष्परिणाम आगामी कुछ वर्षों में हमारे सामने होंगे।

ooo

June-July : 2009

हिन्दी

शीराज़ा



Published by the Secretary on behalf of

J&K Academy of Art, Culture and Languages, Jammu

and Printed at Rohini Printers, Kot Kishan Chand, Jalandhar City (Pb.)